[illegible]
[illegible]
[illegible] : [illegible]
[illegible] : [illegible]
[illegible] : [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

हिन्दी
सरस गद्य-प्रवेशिका

सम्पादक—
पृथ्वीनाथ पुष्प
अमरसिंह कालेज, श्रीनगर

कपूर ब्रादर्ज़
श्रीनगर (काश्मीर)

मूल्य २॥।)

प्रकाशक
कपूर ब्रदर्स
श्रीनगर (कश्मीर)

आभार



जिन लेखकों की रचनाएं इस संग्रह में संकलित हैं उनके हम अत्यन्त आभारी हैं।

प्रकाशक—

मुद्रक—
कैम्ब्रिज प्रिन्टर्स को० इण्ड० सो० लि०
उर्दू बाजार, दिल्ली।

प्यारे बच्चो !

'सरस गद्य-प्रवेशिका' आपके नन्हें हाथों में आ ही गई—यह देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। प्रसन्नता इसलिए कि आप इस संग्रह में जीवन की रंग-बिरंगी झलकियाँ देखकर कई मज़ेदार और काम की बातें समझ लेंगे और स्वयं भी कुछ-कुछ लिखने का अभ्यास करेंगे।

क्या सोचने लगे आप ? कि भला हम लिख ही क्या सकते हैं ? भई, यह भी कोई सोचने की बात है ? ज़रा देखिए तो इस संग्रह में जो लेख (निबन्ध, कहानी, नाटक, पत्र, जीवनी या रेखाचित्र) आपके सामने हैं उनमें लेखकों ने क्या कुछ कहने की चेष्टा की है।

आप देखेंगे कि उन्होंने अपने आस-पास के जीवन ही की बातें अपने लेखों में हमारे सामने रखी हैं। किसी ने आपबीती सुनाई है, किसी ने जगबीती। किसी ने बचपन की कोई रोचक घटना कुछ इस तरह लिखी है कि हम बड़े चाव से पढ़ने बैठते हैं; तो किसी ने हमारे समाज में आये दिन घटने वाली बातें कुछ इस प्रकार कहीं हैं कि हमारा मन मोह लेती हैं। किसी ने यात्रा का ब्यौरा लिखा है, तो किसी ने लोक-जीवन के चित्र खींचे हैं। किसी ने जल की आपबीती सुनाई है तो किसी ने 'हीरा और कोयला' की बातचीत हम तक पहुँचाई है। किसी ने विज्ञान की करामात पर प्रकाश डाला है, तो किसी ने हमें कीड़ों की दुनिया में घुमाया-फिराया है। किसी ने समाज की छान-बीन की है तो किसी ने मित्रता की महिमा का वर्णन किया है। किसी ने भाषा के विकास की कहानी लिखी है, तो किसी ने कविता और साहित्य की चर्चा की है। किसी ने महापुरुषों के सम्पर्क में आकर उनके व्यक्तित्व का विवेचन किया है, तो किसी ने साधारण जनता के सुख-दुख की कहानी की है। किसी ने हमें उत्साहित करने की कोशिश

का है तो किसी ने हमारे हृदय में दया और करुणा के भाव जगाने का प्रयत्न किया है। किसी ने हमें हँसा कर आनन्द देने की चेष्टा की है तो किसी ने ज्ञान विज्ञान की बातें बता कर हमारे मन को अधिक उत्सुक किया है।

आप भी इसी प्रकार आपबीती या जगबीती सुना सकते हैं। आप भी अपने घर या स्कूल के जीवन की किसी रोचक घटना या अनुभव का वर्णन कर सकते हैं। चाहे आप यात्रा-ट्रिप, खेल-कूद, दौड़-धूप, हंसी-मज़ाक, गप-शप या सभा-समारोह का ब्यौरा लिखें या कहानी अथवा नाटक के रूप में इन घटनाओं को पेश करें। कुछ भी हो, लिखिए अवश्य; और कम-से-कम इतना तो कीजिए कि इस संग्रह का जो-जो लेख आप पढ़ते जाएँ उसे आप अपने शब्दों में फिर से लिख डालें और बाद में किसी तरह के और-और 'अनुभव' या क़िस्से-कहानियाँ जो भी आप ने सुनी या पढ़ी हों, अपने शब्दों में लिखते रहें।

एक बात और! क्यों न आप रोज़ शाम को अपनी डायरी भी लिखा करें? दिन-भर में जो महत्त्वपूर्ण बातें हुई हों उनकी चर्चा करें; किस-किस से मिले; किससे क्या बातें हुईं; कहाँ पर क्या घटनाएँ घटीं; कौन-सी किताब पढ़ी; कौन-सी कहानी, नाटक, निबन्ध या उपन्यास पढ़ा; उनमें क्या लिखा है; उसकी कौन-सी बातें सबसे अधिक पसन्द आईं और क्यों? इस तरह की कुछ एक बातें आप लिख ही सकते हैं।

आज ही से डायरी लिखना शुरू करके देख लीजिए कि यह काम कितना रोचक और लाभदायक है। शुरू-शुरू में झिझक अवश्य होगी पर ज्यों-ज्यों आप अभ्यास करते जाएँगे, त्यों-त्यों आपका यह काम आसान होता जाएगा। तो आज ही से लिखना शुरू करेंगे आप?

आपका आपना,

'पुष्प'

विषय-सूची

नन्हे

अभिनव

को

लोहार की एक

पौ फटने की खुशी में संसार के सारे मुर्गे अपना गला फाड़ कर चुप हो चुके थे। छोटी चिड़ियाँ खुली हुई खिड़कियों से झाँक कर सोने वालों को धिक्कार रही थीं।

जागने की कोशिश में उसने भी कुछ करवटें बदल डालीं। पर दो करवटों के बीच में उसकी आँखें फिर लग गईं। उसने स्वप्न में क्या देखा कि ब्रह्मा जी अपने कमण्डल में हिमालय पर्वत को रख कर हिला रहे हैं। वह उठ बैठा। उसने देखा कि उसके कमरे का दरवाज़ा हाथों से, लकड़ियों से, जूतों से पीटा जा रहा है।

उसने घबरा कर कमरा खोल दिया। बाहर बोर्डिंग के छटे हुए शैतानों का एक दल खड़ा था। उनमें से एक ने कहा—'अजी तुम अभी सो रहे हो! आज हम लोगों की पिकनिक पार्टी है। तुम्हें भी चलना होगा।'

अपने दुर्भाग्य से माधो ने 'नहीं' करना नहीं सीखा था। सात बजे वे सब रवाना हो गये।

पिकनिक का थोड़ा आनन्द उसे चलने के पहले-पहले ही प्राप्त हो गया, जब प्रायः सभी ने उसे अपनी एक-न-एक चीज़ हवाले की। मुरारी ने अपना ओवरकोट उसके कन्धों पर डाल दिया कि सन्ध्या समय ज़रूरत पड़ेगी तो ले लूँगा। मोहन ने दो मोटे उपन्यास उसकी बगल में दबा दिये कि इच्छा होगी तो वहीं लेट कर पढ़ूँगा। मोती ने अपने डम्बल उसे पकड़ा दिये कि नदी के किनारे खुली हवा में कसरत करूँगा।

मालगाड़ी-सा लदा हुआ और इंजन-सा हाँफता हुआ वह निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा। दोपहर तक खाना तैयार हुआ और लोग खाने बैठे।

खाने के पहले वह हाथ-पाँव धोने नदी के किनारे गया था। लौट

कर देखता है कि उसकी पत्तल से चूरमे का लड्डू ग़ायब है और दहीबड़ों के नाम पर सकोरे में थोड़ा मठा बच रहा है।

लम्बी साँस लेकर वह खाने बैठा। खाने के बाद लोगों ने उसकी कमीज़ में, जो उसने उतार कर टाँग दी थी, हाथ पोंछे। वह लेटा था, कि उसकी नाक पर सुंघनी मुरकी जाने लगी। अपनी नाराजगी प्रकट करने के लिए वह उनकी ओर पीठ फेर कर बैठा तो उसकी पीठ पर तबला बजने लगा।

बेचारा सबसे अलग पत्थर जा बैठा। उसका मन खट्टा हो गया था। उसकी आज तक की आपबीती उसकी आँखों के सामने गुज़रने लगी।

बोर्डिंग में उसका पहला दिन भी ख़ैरियत से न बीता था—उसने अपने बादामी जूतों पर काली पालिश पुती हुई पायी थी।

फिर तो वह रोज़ ही ऐसी हरकतों का शिकार बनता। बाहर से साँकल चढ़ा कर वह घण्टों अपने कमरे में कैद कर दिया जाता। बोर्डिंग-भर में जितने केले और संतरे खर्च होते उनके छिलके उसके दरवाजे पर फैंके जाते।

एक बार उसका आधा टीन घी भी गायब हो गया और उसके स्थान पर चावलों का माँड भरा मिला। एक रोज वह पानी पीने के लिए मुँह के पास लोटा ले गया था कि उसमें से एक जीता जागता मेंढक उछल पड़ा। लोटा हाथ से छूट कर उसके पैर पर गिरा और वह अरसे तक लंगड़ाता रहा।

एक समय आता है जब चन्दन भी आग उगलता है। वह दस कदम भी न चला होगा कि चीख़ उठा। जब तक लोग उसके पास दौड़ कर आये तब तक वह लड़खड़ा कर गिर पड़ा। चारों ओर से "क्या है, क्या है, क्या है?" की आवाज़ आने लगी। उसने हाय मारकर कहा—मुझे साँप ने काट खाया है!

यह कैसे रंग में भंग ! जैसे सबको काठ मार गया । शहर से सात मील का फासला और पगडंडियों का रास्ता ! कोई होशियार डाक्टर मिलता तो बेचारे की जान न जाती । लेकिन डाक्टर बिना शहर गये कहाँ मिलेंगे ?

मुरारी के भी हाथ-पाँव फूल गये थे। पर उसने शीघ्र अपने को सम्भाला । पास के गाँव से दो रुपये में एक खाट मोल लाया । चारों लड़के इसी खाट पर माधो को उठाये ले दौड़े । बाकी दस बारह लड़के साथ-साथ दौड़ चले । पहली चौकड़ी के थक जाने पर दूसरी चौकड़ी खाट को उठा लेती । यों ही कन्धे बदलते वे आगे चले जा रहे थे ।

उसका वज़न भी कम नहीं था । जो उसे उठाये दौड़ रहे थे, उनका बुरा हाल था । पसीने से तर तो सभी हो रहे थे, पर कुछ लड़के अपना पेट पकड़ कर हाँफ रहे थे । रास्ते में जो मिलता, वही उन्हें और तेज़ दौड़ने की सलाह देता ।

माधो भी कभी दम न लेने देता था । वह खाट पर लेटा बराबर कराहता रहा । कभी-कभी उठ बैठता, पागलों-सा हाथ पटक देता । उस समय उसकी खाट जिनके सर पर होती, वे बेचारे त्राहि-त्राहि पुकारते । उन्हें इतना भी समय नहीं था कि रुक कर ज़रा सर सहला लेते ।

अपनी विक्षिप्ता में वह प्रायः चिल्ला उठता कि मेरी जान जा रही है और तुम लोग चहलक़दमी कर रहे हो । कभी-कभी वह मार भी बैठता । उसके दाहिने हाथ की ओर खाट उठाने में लड़के झिझकते थे, पर लाचारी थी, उठाना पड़ता ।

ख़ैर, घण्टा भर की सरपट दौड़ के बाद शहर की बिजलियाँ दिखाई पड़ने लगीं । शहर में घुसते ही बोर्डिंग था और पास ही था सिविल सर्जन का बंगला ।

लड़कों ने सिविल सर्जन के बंगले पर उसकी खाट उतारी । थकावट के कारण वे मृतप्रायः हो रहे थे । जिसे जहाँ जगह मिली वहीं गिर कर

बैठ रहा। उनकी साँस धोंकनी की तरह चल रही थी। मुँह से सीधे बात नहीं निकलती थी।

खैर साहब को सूचना मिली तो खाना छोड़ कर बाहर आये। उन्हें देख कर माधो उठ बैठा। साहब ने पूछा—"कहाँ पर काटा है, साँप ने ?"

माधो ने निहायत सादगी से कहा—"कैसा साँप ?"

"तुम्हें साँप ने काटा है न ?" साहब ने पूछा।

"नहीं तो कौन कहता है ?" माधो ने विस्मय से पूछा। और साहब ने उसके साथियों की ओर इशारा किया। उसने कहा—"ये सब शैतान हैं। आपको बना रहे हैं। मैं थक कर इस खाट पर सो गया था, शरारत से ये मुझे ले भागे।"

यह सुन कर साहब उन शैतानों को घूरने लगा, मानो उन्हें आँखों से कच्चा ही खाने की कोशिश कर रहा हो। माधो का वहाँ रहना बेकार था, वह चलता हुआ और उसके यार लोग साहब से निपटते रहे।

उस दिन से फिर उसे किसी ने नहीं छेड़ा। उसके साथी अब उसे बड़े आदर से देखने लगे।

—अन्नपूर्णानन्द वर्मा

काकी

उस दिन बड़े सवेरे जब श्यामू की नींद खुली तब उसने देखा—घर-भर में कुहराम मचा हुआ है। उसकी काकी—उमा एक कम्बल पर नीचे से ऊपर तक एक कपड़ा ओढ़े हुए भूमि-शयन कर रही है, और घर के सब लोग उसे घेर कर बड़े करुण-स्वर में विलाप कर रहे हैं।

लोग जब उमा को श्मशान ले जाने के लिए उठाने लगे तब श्यामू ने बड़ा उपद्रव मचाया। लोगों के हाथों से छूट कर वह उमा के ऊपर जा गिरा। बोला, "काकी तो सो रही हैं। उन्हें इस तरह उठाकर कहा लिये जा रहे हो? मैं न ले जाने दूँगा।"

लोगों ने बड़ी कठिनता से उसे हटा पाया। काकी के अग्नि-संस्कार में भी वह न जा सका। एक दासी राम-राम कर उसे घर पर ही संभाले रही।

यद्यपि बुद्धिमान् गुरुजनों ने उसे विश्वास दिलाया कि उसकी काकी उसके मामा के यहाँ गई है, परन्तु असत्य के आवरण में सत्य बहुत समय तक छिपा न रह सका। आसपास के अन्य अबोध बालकों के मुँह से ही वह प्रकट हो गया। यह बात उससे छिपी न रह सकी कि काकी और कहीं नहीं, ऊपर राम के यहाँ गई है। काकी के लिए कई दिन तक लगातार रोते-रोते उसका रुदन तो क्रमशः शान्त हो गया परन्तु शोक शान्त न हो सका। जिस तरह वर्षा के अनन्तर एक ही दो दिनों में पृथ्वी के ऊपर का पानी अगोचर हो जाता है, परन्तु बहुत भीतर तक उसकी आर्द्रता बहुत दिन तक बनी रहती है, उसी प्रकार

वह शोक उसके अन्तस्तल में जाकर बस गया। वह प्रायः अकेला बैठा शून्य मन से आकाश की ओर ताका करता।

एक दिन उसने उपर तक पतंग उड़ती देखी। न जाने क्या सोचकर उसका हृदय एकदम खिल उठा। विश्वेश्वर के पास जाकर बोला—"काका, मुझे एक पतंग मँगा दो। अभी मँगा दो।"

पत्नी की मृत्यु के बाद से विश्वेश्वर बहुत अन्यमनस्क से रहते थे। "अच्छा, मँगा दूँगा"—कह कर वे उदास भाव से बाहर चले गये।

श्यामू पतंग के लिए बहुत उत्कण्ठित हो उठा। वह अपनी इच्छा किसी तरह न रोक सका। एक जगह खूँटी पर विश्वेश्वर का कोट टँगा हुआ था। इधर-उधर देखकर उसने उसके पास एक स्टूल सरका कर रक्खा और ऊपर चढ़ कर कोट की जेबें टटोलीं। उसमें से एक चवन्नी का आविष्कार करके वह तुरन्त वहाँ से भाग गया।

सुखिया दासी का लड़का—भोला श्यामू का समवयस्क साथी था। श्यामू ने उसे चवन्नी देकर कहा—"अपनी जीजी से कहकर गुपचुप एक पतंग और डोर मँगा दो। देखो, खूब अकेले में लाना; कोई जान न पावे।"

पतंग आई। एक अंधेरे घर में उसमें डोर बाँधी जाने लगी। श्यामू ने धीरे से कहा—"भोला, किसी से न कहे तो एक बात कहूँ।"

श्यामू ने रहस्य खोला। कहा—"मैं यह पतंग ऊपर राम के यहाँ भेजूँगा। इसे पकड़ कर काकी नीचे उतरेंगी। मैं लिखना नहीं जानता नहीं तो इस पर उनका नाम लिख देता!"

भोला श्यामू से अधिक समझदार था। उसने कहा—"बात तो बड़ी अच्छी सोची, परन्तु एक कठिनता है। यह डोर पतली है। इसे पकड़कर काकी उतर नहीं सकती। इसके टूट जाने का डर है। पतंग में मोटी रस्सी हो तो सब ठीक हो जाय।"

श्यामू गम्भीर हो गया। मतलब यह कि बात लाख रुपये की सुझाई गई है। परन्तु कठिनता यह थी कि मोटी रस्सी कैसे मंगाई जाय। पास में दाम हैं नहीं और घर के जो आदमी उसकी काकी को बिना दया-माया के जला आये हैं, वे उसे इस काम के लिए कुछ नहीं देंगे। उस दिन श्यामू को चिन्ता के मारे बड़ी रात तक नींद नहीं आई।

पहले दिन की ही तरकीब से दूसरे दिन फिर उसने विश्वेश्वर के कोट से एक रुपया निकाला। ले जाकर भोला को दिया और बोला—"देख भोला, किसी को मालूम न होने पावे। अच्छी दो रस्सियाँ मँगा दे। एक रस्सी ओछी पड़ेगी। जवाहर भैया से मैं एक कागज पर 'काकी' लिखवा रक्खूँगा। नाम की चिट रहेगी तो पतंग ठीक उन्हीं के पास पहुँच जायगी।"

दो घण्टे बाद प्रफुल्ल मन से श्यामू और भोला अँधेरी कोठरी में बैठे पतंग में रस्सी बाँध रहे थे। अकस्मात् शुभ कार्य में विघ्न की तरह उग्र मूर्त्ति धारण किये हुए विश्वेश्वर वहाँ आ घुसे। भोला और श्यामू को धमका कर बोले—"तुमने हमारे कोट से रुपया निकाला है?"

भोला सकपका कर एक डाँट में मुखबिर बन गया। बोला—"श्यामू भैया ने रस्सी और पतंग मंगाने के लिए निकाला था।"

विश्वेश्वर ने श्यामू को दो तमाचे जड़ कर कहा—"चोरी सीख कर जेल जायेगा? अच्छा, तुझे आज अच्छी तरह समझाता

हूं।" कहकर दो-चार थप्पड़ और जड़कर पतंग फाड़ डाली। अब रस्सियों की ओर देखकर उन्होंने पूछा—"ये किसने मँगाई ?"

भोला ने कहा—"इन्होंने मँगाई थीं। कहते थे, इससे पतंग तान कर काकी को राम के यहाँ से नीचे उतारेंगे।"

विश्वेश्वर एक क्षण के लिए हत्बुद्धि होकर खड़े रह गये। उन्होंने फटी हुई पतंग उठाकर देखी। उस पर एक कागज चिपका था, जिस पर लिखा हुआ था—"काकी।"

—सियारामशरण गुप्त

यशोदा का मातृत्व

आज माँ यशोदा के हृदय में विषाद का भयंकर तूफान उठ रहा है। सामने से यमुना की काली धारा बही जा रही है और उसके नीलोज्ज्वल पानी की ओर देखते-देखते उसकी आँखों में भी बरबस जल भरा आ रहा है।

घटनाओं के बीत जाने पर भी उनका कुछ-न-कुछ अस्तित्व बना रहता है। तभी तो कितनी ही पुरानी बातें याद आ-आ कर यशोदा के हृदय पर मर्मन्तुद आघात कर रही हैं। लम्बे समय और असंख्य घटनाओं ने उसके हृदय को ढक दिया है। किसी घटना का सहारा लेकर वह उसे ज्योंही कुरेदने बैठती है, त्योंही उसे रोते हुए मातृत्व की वेदना के साथ रक्त ही रक्त टपकता दीखता है। कालिन्दी-कूल की शीतल वायु भी उसे कुछ शान्ति नहीं दे पा रही है।

कृष्ण को आज गोकुल छोड़े कितने वर्ष बीत गए हैं। उसके बारे में अच्छे-बुरे कितने ही संवाद मिले हैं, पर वह जब से गया है स्वयं कभी वापस नहीं लौटा। यशोदा के मन में इस बात की कितनी व्यथा है, इसे वही जानती है!

उसने सुना है कि कृष्ण एक बड़ा राजा बन गया है। बलराम भी उसी के साथ है। परन्तु वे दोनों अपने ऐश्वर्य में माखन-रोटी खिलाने वाली और सबसे बढ़कर प्राणाधिक स्नेह करने वाली यशोद मैया को भूल गए हैं—यह बात शूल की तरह उसके हृदय में चुभा करती है। उसने कभी उन राजसी भोगों को भोगने की इच्छा नहीं की; उसे उस ऐश्वर्य की लिप्सा भी

नहीं है; किन्तु राजराजेश्वर श्री कृष्ण की माँ कहलाने की इच्छा अवश्य है। कृष्ण आए और उन्हीं बचपन के दिनों की तरह उसे 'माँ' कहकर माखन–रोटी माँगे तो उसकी एक बड़ी भारी साध पूरी हो जाए।

कोई भी माँ ज़िन्दगी भर अपने बच्चे को आँचल से ढंककर नहीं रख पाती, परन्तु यह जो कृष्ण का मथुरा और फिर द्वारिका जाकर उसे भूल जाना है, यह कुछ और ही चीज़ है।

गोकुल में जंगल पक्षियों के कलरव से मुखरित हो रहे हैं। तरु-पंक्तियों के पीछे खेत जोतते बैलों की टालों की आवाज आ रही है। रह-रह कर अपने बछड़े को पुकारती-सी किसी गाय के रंभाने का भी स्वर सुन पड़ता है। कभी कोई एकाध ग्वाला नदी पर आता है और चला जाता है। पर यशोदा का ध्यान इस ओर नहीं है। उसका मन तो अतीत को लौट पड़ा है। छोटे-से दो बालक—आज के प्रौढ़ बलराम और कृष्ण उसके लिए अब भी खिलाड़ी बालक ही हैं—उसके मन को अपने साथ लिए ये दौड़ते फिर रहे हैं। उनका हठ, उनकी शरारतें, उनकी क्रीड़ाएँ एक-एक करके उसे याद आने लगीं। उनके कारण उसे पड़ौसियों से कितने ताने और उलाहने सुनने पड़ते थे; उसे स्वयं कितनी मुसीबत और परेशानी उठानी पड़ती थी। तब उसे क्या मालूम था कि इस मुसीबत और परेशानी में भी इतना सुख भरा है कि इसके छिन जाते ही जीना दूभर हो उठेगा। वे सब बातें उसे एक-एक करके याद आने लगीं। उसकी आँखें उसके अनजाने ही हर्ष और विषाद के अश्रुओं की वर्षा करने लगीं। उसकी आकृति पर धुंधली-सी शान्ति की छाया आ पड़ी।

यशोदा की दृष्टि ऊपर उठी। उसका मन फिर म्लान हो गया। सामने के यमुना के मोड़ की ओर देखते ही वह सिहर-सी उठी। अनेक वर्ष पूर्व इसी मोड़ पर निराश राधा ने डूब मरने का प्रयत्न किया था। बड़ी कठिनाई से अर्धमृतावस्था में उसे बचाया जा सका था। राधा आज कहाँ है, यशोदा को कुछ नहीं मालूम, परन्तु फिर भी उसके लिए यशोदा के हृदय में स्नेह था। राधा की याद उसके हृदय को मसोसने सी लगी। बड़ी देर तक उसे राधा की याद आती रही। कृष्ण के ऊपर उसे वितृष्णा हो उठी। राधा ने कृष्ण के लिए कितना किया पर कृष्ण...... वह बेचैन-सी हो उठी।

तभी उसकी स्मृति में एक और छोटा-सा मुख आ उपस्थित हुआ। मानो सौ-सौ कशाघात हुए हों। यशोदा का मन ऐसा विह्वल हो उठा। उसके सारे हर्ष-शोक उसी विषाद की महालहर में निमग्न हो गए।

कैसी काली थी वह रात! भादों की अष्टमी, बिजली की चमक और वर्षा की बौछार! आसमान कड़क-कड़क कर मानो टूट पड़ रहा था। उस रात यशोदा ने अपनी प्रथम और अन्तिम सन्तान को जन्म दिया था। हाय, वह नन्हीं-सो सुकुमार बालिका! यशोदा ने उस गोरी सुन्दरी कन्या को देखा अवश्य था, पर उन घोर वेदनामय क्षणों में देखा हुआ उसका वह मुख अब सही-सही चित्रित नहीं हो पा रहा था। यशोदा की छाती में मातृत्व का दावानल धधक कर जल उठा।

उसी रात को कहीं से वसुदेव आये। एक साँवले से बालक के बदले उसकी गोरी कन्या को वे ले गये। बाद में मालूम हुआ कि वह बेचारी अगले ही दिन कंस के हाथों समाप्त हो गई।

यशोदा उसे एक तरह से भूल ही चुकी थी। पर आज जब उसे कृष्ण का अभाव बहुत खटक रहा था, अपनी उस कुछ ही क्षणों की परिचित पुत्री के लिये उसका हृदय 'हाय-हाय' कर उठा। पश्चत्ताप और विवशता से उसकी आँखें बरसने लगीं और वन में से आती हुई हवा साँय-साँय करके उसके हृदय के हाहाकार में स्वर मिलाकर सहानुभूति-सी प्रकट करने लगी।

—"विराज"

मिठाईवाला

बहुत ही मीठे स्वरों के साथ वह गलियों में घूमता हुआ कहता—"बच्चों को बहलाने वाला, खिलौने वाला।"

इस अधूरे वाक्य को वह ऐसे विचित्र, किन्तु मादक मधुर ढंग से गाकर कहता कि सुनने वाले एक बार अस्थिर हो उठते। उसके स्नेहाभिषिक्त कण्ठ से फूटा हुआ उपर्युक्त गान सुनकर निकट के मकानों में हल-चल मच जाती। छोटे-छोटे बच्चों को अपनी गोद में लिए हुए युवतियाँ चिकों को उठाकर छज्जों पर से नीचे झाँकने लगतीं। गलियों और उनके अन्तर्व्यापी छोटे-छोटे उद्यानों में खेलते और इठलाते हुए बच्चों का झुण्ड उसे घेर लेता और तब वह खिलौने वाला वहीं कहीं बैठ कर खिलौने की पेटी खोल देता।

बच्चे खिलौने देख कर पुलकित हो उठते। वे पैसे लाकर खिलौनों का मोल-भाव करने लगते। पूछते—"इछका दाम क्या है, औल इछका, औल इछका ?" खिलौने वाला बच्चों को देखता, उनकी नन्हीं-नन्हीं अँगुलियों और हथेलियों से पैसे ले लेता और बच्चों की इच्छानुसार उन्हें खिलौने दे देता। खिलौने लेकर बच्चे उछलने-कूदने लगते और फिर खिलौने वाला उसी प्रकार गाकर चल देता—"बच्चों को बहलाने वाला, खिलौने वाला !" सागर की हिलोर की भाँति उसका वह मादक गान गली भर के मकानों में इस ओर से उस ओर तक, लहराता हुआ पहुँचता और खिलौने वाला आगे बढ़ जाता।

राय विजय बहादुर के बच्चे भी एक दिन खिलौने लेकर घर आये; वे दो बच्चे थे—चुन्नू और मुन्नू। चुन्नू जब खिलौना ले आया, तो बोला—"मेला घोला कैछा छुन्दल ऐ !"

मुन्नू बोला—"औल देख मेला आती कैसा सुन्दल ऐ !"

दोनों अपने हाथी घोड़े ले घर-भर में उछलने लगे। इन बच्चों की माँ रोहिणी कुछ देर तक खड़े-खड़े उनका खेल निरखती रहीं। अन्त में दोनों बच्चों को बुलाकर उसने पूछा—"अरे ओ चुन्नू-मुन्नू ये खिलौने तुमने कितने में लिये हैं ?"

मुन्नू बोला—"दो पैछे में। थिलौने वाला दे गया ऐ !"

रोहिणी सोचने लगी—इतने सस्ते कैसे दे गया है ?

कैसे दे गया है, यह तो वही जाने, लेकिन दे तो गया ही है, इतना तो निश्चय है।

ज़रा-सी बात ठहरी, रोहिणी अपने काम में लग गई। फिर कभी उसे इस पर विचार करने की आवश्यकता भला क्यों पड़ती ?

(२)

छः महीने बाद—

नगर-भर में दो ही-चार दिनों में एक मुरली वाले के आने का समाचार फैल गया। लोग कहने लगे—भाई वाह ! मुरली बजाने में यह एक ही उस्ताद है। मुरली बजा कर, गाना सुनाकर, वह मुरली बेचता भी है। सो भी दो-दो पैसे। भला इसमें उसे क्या मिलता होगा। मेहनत भी तो न आती होगी।

एक व्यक्ति ने पूछ लिया—"कैसा है वह मुरली वाला ? मैंने तो उसे नहीं देखा।"

उत्तर मिला—"उमर तो उसकी अभी अधिक न होगी ; यही तीस-बत्तीस का होगा। दुबला-पतला गोरा युवक है, बीकानेरी रंगीन साफ़ा बाँधता है।"

"वही तो नहीं, जो पहले खिलौने बेचा करता था ?"

"क्या वह पहले खिलौने भी बेचता था ?"

'हाँ, जो ग्राकार-प्रकार तुमने बताया है उसी प्रकार का वह भी था।"

"तो वही होगा। पर भई, है वह एक ही उस्ताद।"

प्रति दिन उसी प्रकार उस मुरली वाले की चर्चा होती। प्रति-दिन नगर की प्रत्येक गली में उसका मादक, मृदुल स्वर सुनाई पड़ता—"बच्चों को बहलाने वाला, मुरलिया वाला !"

रोहिणी ने भी मुरली वाले का यह स्वर सुना। तुरन्त ही उसे खिलौने वाले का स्मरण हो आया। उसने मन ही मन कहा—खिलौने-वाला भी इसी तरह गा-गा कर खिलौने बेचा करता था।

रोहिणी उठकर अपने पति विजय बाबू के पास गई। बोली—"ज़रा उस मुरली वाले को बुलाओ तो चुन्नू-मुन्नू के लिए ले लूँ। क्या जाने यह फिर इधर आवे, न आवे। वे भी जान पड़ता है, पार्क में खेलने निकल गये हैं।"

विजय बाबू एक समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। उसी तरह उसे लिए हुए वे दरवाजे पर आकर मुरली वाले से बोले—'क्यों भई, किस तरह दते हो मुरली ?"

किसी की टोपी गली में गिर पड़ी, किसी का जूता पार्क ही में छूट गया और किसी की सोथिनी (पायजामा) ही ढीली होकर लटक आई। इस तरह दौड़ते-हाँफते हुए बच्चों का झुण्ड आ पहुँचा। एक स्वर से सब बोल उठे—"अम बी लेंदे मुल्ली, औल अम बी लेंदे मुल्ली।"

मुरली वाला हर्ष से गद्‌गद् हो उठा। बोला—"सब को देंगे भैया, ज़रा रुको, ज़रा ठहरो, एक-एक को लेने दो। अभी इतनी जल्दी हम

कहीं लौट थोड़े ही जायेंगे। बेचने तो आये ही हैं। और हैं भी इस समय मेरे पास एक-दो नहीं, पूरी सत्तावन।···हाँ बाबू जी, क्या पूछा था आपने कितने में दी···दी तो वैसे तीन-तीन पैसे के हिसाब से हैं, पर आपको दो-दो पैसे में ही दे दूँगा।"

विजय बाबू भीतर-बाहर दोनों रूपों में मुस्करा दिये। मन-ही-मन कहने लगे—"कैसा ठग है! देता सबको इसी भाव से है, पर मुझ पर उल्टा एहसान लाद रहा है।" फिर बोले—"तुम लोगों की झूठ बोलने की आदत होती है। देते होगे सभी को दो-दो पैसे में, पर एहसान का बोझ मेरे ऊपर लाद रहे हो।"

मुरली वाला एकदम अप्रतिभ हो उठा। बोला—आपको क्या पता बाबू जी कि इनकी असली लागत क्या है? यह तो ग्राहकों का दस्तूर होता है कि दुकानदार चाहे हानि ही उठाकर चीज़ क्यों न बेचे, पर ग्राहक यही समझते हैं—दुकानदार मुझे लूट रहा है।···आप भला काहे को विश्वास करेंगे। लेकिन सच पूछिए तो बाबू जी इनका असली दाम दो ही पैसे हैं। आप कहीं से भी दो-दो पैसे में ये मुरलियाँ नहीं पा सकते। मैंने तो पूरी एक हज़ार बनवाई थीं, तब मुझे इस भाव पड़ी हैं।"

विजय बाबू बोले—"अच्छा-अच्छा, मुझे ज्यादा वक्त नहीं है, जल्दी से दो ठो निकाल दो।"

दो मुरलियाँ लेकर विजय बाबू फिर मकान के भीतर पहुँच गए। मुरली वाला देर तक उन बच्चों के झुण्ड में मुरलियाँ बेचता रहा। उसके पास कई रंग की मुरलियाँ थीं। बच्चे जो रंग पसन्द करते,

मुरली वाला उसी रंग की मुरली देता।

"यह बड़ी अच्छी मुरली है, तुम यही ले लो बाबू, राजा बाबू, तुम्हारे लायक तो बस यही है। हाँ भैये, तुमको वही देंगे। यह लो। तुमको वैसी न ऐसी चाहिए ?—यह नारंगी रंग की ? —अच्छा यहा लो।...पैसे नहीं हैं ? अच्छा, अम्मा से पैसे ले आओ। मैं अभी बैठा हूँ...तुम ले आये पैसे ?...अच्छा, यह लो तुम्हारे लिये मैंने पहले ही से निकाल रखी थी।...तुमको पैसे नहीं मिले ! तुमने अम्मा से ठीक तरह से माँगे न होंगे ? धोती पकड़ के, पैरों में लिपट के, अम्मा से पैसे माँगे जाते हैं, बाबू।...हाँ, फिर जाओ। अबकी बार मिल जायेंगे।...दुअन्नी है ? तो क्या हुआ, ये छः पैसे वापिस लो। ठीक हो गया न हिसाब ?...मिल गये पैसे। देखो, मैंने कैसी तरकीब बताई ? अच्छा, अब तो किसी को नहीं लेना है ?—सब ले चुके ! तुम्हारी माँ के पास पैसे नहीं हैं ! अच्छा, तुम भी यह लो।...अच्छा, तो अब मैं चलता हूँ।"

इस तरह मुरली वाला फिर आगे बढ़ गया।

(३)

आज अपने मकान में बैठी हुई रोहिणी मुरली वाले की सारी बातें सुनती रही। आज भी उसने अनुभव किया, बच्चों के साथ इतने प्यार से बातें करने वाला फेरीवाला पहले कभी नहीं आया—फिर, वह सौदा भी कैसा सस्ता बेचता है और आदमी कैसा भला जान पड़ता है ! समय की बात है, जो बेचारा इस तरह मारा-मारा फिरता है। पेट जो कराए सो थोड़ा।

इसी समय मुरली वाले का क्षीण स्वर निकट की दूसरी गली से सुनाई पड़ा—बच्चों को बहलाने वाला, मुरलिया वाला।

रोहिणी इसे सुनकर मन-ही-मन कहने लगी—"स्वर कैसा मीठा है इसका !"

बहुत दिनों तक रोहिणी को मुरली वाले का यह मीठा स्वर और उसकी बच्चों के प्रति स्नेह-सिक्त बातें याद आती रहीं। महीने-के-महीने आये और चले गए, पर मुरली वाला न आया। फिर धीरे-धीरे उसकी स्मृति भी क्षीण होती गई।

(४)

आठ मास बाद—

सर्दी के दिन थे। रोहिणी स्नान करके अपने मकान की छत पर चढ़ कर आजानुविलम्बित केश-राशि सुखा रही थी। इसी समय नीचे की गली में सुनाई पड़ा—बच्चों को बहलाने वाला, मिठाई वाला।

मिठाईवाले का यह स्वर परिचित था, झट से रोहिणी नीचे उतर आई। इस समय उसके पति मकान में नहीं थे। हाँ, उसकी वृद्धा दादी। रोहिणी उनके निकट आकर बोली—'दादी, चुन्नू-मुन्नू के लिए मिठाई लेनी है। ज़रा कमरे में चल कर ठहराओ तो। मैं उधर कैसे जाऊँ, कोई आता न हो। ज़रा हटकर मैं भी चिक की ओट में बैठी रहूँगी।"

दादी उठकर कमरे में आकर बोली—"ऐ मिठाई वाले, इधर आना।"

मिठाई वाला निकट आ गया। बोला—माँ, कितनी मिठाई दूँ ? नयी तरह की मिठाइयाँ है; रंग-बिरंगी, कुछ-कुछ खट्टी, कुछ-कुछ मीठी और ज़ायक़ेदार। बड़ी देर तक मुँह में टिकती हैं। जल्दी नहीं घुलतीं। बच्चे बड़े चाव से चूसते हैं। इन गुणों के सिवाय ये खाँसी को भी दूर करती हैं। कितनी दूँ ? चपटी,

गोल और पहलूदार गोलियाँ हैं। पैसे की सोलह देता हूँ।"

दादी बोली—"सोलह तो बहुत कम होती हैं; भला पच्चीस तो देते।"

मिठाई वाला—"नहीं दादी, अधिक नहीं दे सकता। इतनी भी कैसे देता हूँ, यह अब मैं आपको क्या···खैर, मैं अधिक तो न दे सकूँगा।"

रोहिणी, दादी के पास ही बैठी थी, बोली—दादी, फिर भी काफ़ी सस्ती दे रहा है। चार पैसे की ले लो, ये पैसे रहे।"

मिठाई वाला मिठाइयाँ गिनने लगा।

"तो चार पैसे की दे दो। अच्छा, पच्चीस न सही, बीस ही दो। अरे हाँ, मैं बूढ़ी हुई? मोल-भाव मुझे तो अब ज्यादा करना भी नहीं आता।"—कहते हुए दादी के पोपले मुँह की ज़रा-सी मुस्कराहट भी फूट निकली।

रोहिणी ने दादी से कहा—"दादी, इससे पूछो—तुम इस शहर में और भी कभी आये थे, या पहली ही बार आए हो? यहाँ के निवासी तो तुम हो नहीं।"

दादी ने इस कथन को दोहराने की चेष्टा की ही थी कि मिठाई वाले ने उत्तर दिया—"पहली बार नहीं; और भी कई बार आया हूँ।"

रोहिणी चिक की आड़ ही से बोली—"पहले यही मिठाई बेचते हुए आये थे, या और कोई चीज़ लेकर?"

मिठाई वाला हर्ष, संशय और विस्मयादि भावों में डूबकर बोला—"इससे पहले मुरली लेकर आया था; और उससे भी पहले खिलौने लेकर।"

रोहिणी का अनुमान ठीक निकला। अब तो वह उससे और भी कुछ बातें पूछने के लिए अस्थिर—अधीर हो उठी। वह बोली—"इन व्यवसायों में भला तुम्हें क्या मिलता होगा ?"

वह बोला—"मिलता तो क्या है, यही खाने-भर को मिल जाता है। कभी नहीं भी मिलता है। पर हाँ, सन्तोष और धीरज और कभी कभी असीम सुख जरूर मिलता है। और यही मैं चाहता भी हूँ।"

"सो कैसे ? वह भी बताओ।"

"अब व्यर्थ में उन बातों की चर्चा क्यों करूँ ? उन्हें आप जाने ही दें। उन बातों को सुनकर आपको दुःख होगा।"

"जब इतना बताया है, तब और भी बता दो। मैं बहुत उत्सुक हूँ। तुम्हारा हर्जा न होगा। और भी मिठाई मैं ले लूँगी।"

अतिशय गम्भीरता के साथ मिठाई वाले से कहा—

'मैं भी अपने नगर का एक प्रतिष्ठित आदमी था। मकान, व्यवसाय, गाड़ी-घोड़े, नौकर-चाकर सभी कुछ था। स्त्री थी, छोटे-छोटे दो बच्चे भी थे। मेरा वह सोने का संसार था। बाहर सम्पत्ति का वैभव था, भीतर सांसारिक सुख था। स्त्री सुन्दर थी, मेरा प्राण थी। बच्चे ऐसे सुन्दर थे, जैसे सोने के सजीव खिलौने। उनकी अठ-खेलियों के मारे घर में कोलाहल मचा रहता था। समय की गति—विधाता की लीला ! अब कोई नहीं है। दादी, प्राण निकाले नहीं निकले। इसलिए अपने उन बच्चों की खोज में निकला हूँ। वे सब अन्त में हैं तो यहीं कहीं; आखिर कहीं-न-कहीं जन्मे ही होंगे। उस तरह रहता, तो घुल-घुलकर मरता। इस तरह सुख-संतोष के साथ मरूँगा। इस तरह के जीवन में कभी-कभी अपने उन बच्चों की एक झलक-सी मिल जाती है। ऐसा जान पड़ता है, जैसे वे उन्हीं में उछल-उछलकर हँस-खेल रहे हैं। पैसों की कमी थोड़े ही है। आप की

दया से पैसे तो काफ़ी हैं। जो नहीं है, इस तरह उसी को पा जाता हूँ।"

रोहिणी ने अब मिठाई वाले की ओर देखा। देखा—उसकी आँखें आँसुओं से तर हैं।

इसी समय चुन्नू-मुन्नू आ गये। रोहिणी से लिपट कर, उसका अँचल पकड़ कर बोले—"अम्मा, मिठाई।"

"मुझ से लो"—कहकर तत्काल कागज़ की दो पुड़ियों में मिठाइयाँ भर कर मिठाई वाले ने चुन्नू-मुन्नू को दे दीं।

रोहिणी ने भीतर से पैसे फेंक दिए।

मिठाई वाले ने पेटी उठाई और कहा—"अब इस बार ये पैसे न लूँगा।

दादी बोली—"अरे-अरे, न-न, अपने पैसे लिए जा भाई।"

किन्तु तब तक आगे सुनाई पड़ा, उसी प्रकार मादक मृदुल स्वर में "बच्चों को बहलाने वाला, मिठाई वाला।"

—भगवतीप्रसाद बाजपेयी

इस कहानी से यह ज्ञात होता है कि समय की गति— विधाता की लीला अजीब ही है।

कल की बात

समय जाते देर नहीं लगती। पन्द्रह वर्ष बीत चुके; पर जान पड़ता है कि कल की बात है। सन् १९१६ में मैं तीसरी बार इन्ट्रेंस की परीक्षा देने बैठा था।

दो साल मैं लगातार फेल हो चुका था। और चीजों में ज्यों-त्यों पास हो जाता; पर गणित का विषय मुझे अन्त में ले डूबता। छोटे दर्जों में भी इसने मेरे रास्ते में रोड़े अटकाए। परीक्षाओं में इसने मेरे साथ सदा अडङ्गानीति से काम लिया; पर मैं किसी न किसी करवट से दर्जा बराबर चढ़ता ही गया। इन्ट्रेंस में पहुँचना था कि यह पीछे हाथ धोकर पड़ गया।

खैर गणित की कृपा से दो साल फेल होकर तीसरे साल मैं फिर इन्ट्रेंस की परीक्षा देने बैठा। गणित के ज्ञान से अब भी बिल्कुल कोरा था; पर परीक्षा देने चला गया। एक आदत सी पड़ गई थी, जो परीक्षा भवन तक मुझे खींच ले गई।

गणित का पर्चा मेरे सामने रख दिया गया। पर्चा पढ़ने के पहिले मैंने त्रिकुटी में ध्यान लगाकर ईश्वर से प्रार्थना की कि "हे प्रभो! आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिये! कि मैं दो एक सवाल तो ठीक कर सकूँ और नहीं तो शीघ्र सारे गार्डों को दूर मुझ से कीजिये, कि मैं आसानी से नक़ल ही कर सकूँ।"

इसके बाद मैं पर्चों को एक बार पढ़ गया। पढ़ते ही ऐसी इच्छा हुई कि अपना सिर खुजलाऊँ। फिर मैंने सोचा कि पर्चे को दुबारा पढ़ लूँ; तब निश्चित होकर सर खुजलाना शुरू करूँ। मैंने यही किया।

दुबारा पढ़ गया। दुबारा पढ़ डालना महज़ एक रस्म की बात थी; अगर सौ बार भी पढ़ता तो इसी नतीजे पर पहुँचता कि इस कम्बख्त पर्चे का एक सवाल भी मेरे लिए नहीं बनाया गया है।

मैंने क़लम को कान पर चढ़ा लिया और हाथ पर रख कर बैठ रहा। और परीक्षार्थियों की कलमों ने घुड़-दौड़ सी मचा रखा थी, पर मेरी क़लम अभी तक टस से मस भी नहीं हुई। कान पर से उतार कर मैं उसे कापी के सामने ले आया; पर उसने आगे बढ़ने से साफ़ इन्कार कर दिया, मैं हिम्मत न हारा और क़लम सम्हाले बैठा रहा। मुझे इस तरह बैठा देख कर एक गार्ड ने कहा—'क्यों व्यर्थ कापी को क़लम से धमका रहे हो?"

मैं चुप रहा। कहाँ तो मेरे गले में 'फाँसी' पड़ी है और कहाँ इन्हें 'हँसी' सूझ रही है। अपना वक्त सब कुछ कराता है। न मैं ऐसा होता, न वे मेरे ऊपर अपनी जबान माँजते। मैं कभी पर्चे की ओर देखता था, कभी कापी की ओर और कभा क़लम की ओर, पर तीनों ढाक के तीन पात की तरह अलग ही नज़र आते।

मैंने देवता, पित्तर, भुइया, भवानी, सबको मनाया; परन्तु किसी ने स्थिति को सुलझाने की कोशिश न की। मैंने आध घण्टे के अन्दर क़लम में चार नई निबें लगाईं कि शायद इसी प्रकार उसकी अकर्मण्यता दूर हो; पर सब उपचार व्यर्थ गए। मैंने सोचा कि लाओ पर्चे को कापी पर नकल कर दूँ और घर का रास्ता लूँ; पर 'जब तक साँस तब तक आस' ने ऐसा न करने दिया। मेरी इस समय ऐसी दशा थी कि परीक्षक महोदय यदि मेरे सामने आ खड़े होते, तो मैं उन्हें मामा पुकार बैठता। सुना है कि साँप को भी मामा पुकारें तो उसे दया आ जाती है।

मैंने जब अच्छी तरह देख लिया कि और कोई चारा नहीं है, तब यही निश्चय किया कि परीक्षक के नाम कापी में एक पत्र लिख दूँ और लिखकर घर का मार्ग पकड़ूँ।

ज्यों-ज्यों मैं ग़ौर करता था, मुझे एक यही कार्यक्रम समयोचित और उपयुक्त जँचता था। इस कार्यक्रम की विशेषता यह थी कि इससे हानि कुछ भी नहीं थी, क्योंकि परीक्षक यदि मेरी धृष्टता से चिढ़ जाता, तो अधिक से अधिक मुझे फ़ेल कर देता; पर यह कौन नई बात हो जाती ? फेल होना तो यों भी मेरा 'परीक्षा सिद्ध' अधिकार था। इसके विपरीत यदि मेरा पत्र पढ़कर दया से द्रवीभूत होकर वह कुछ नम्बर दे निकलता, तब तो परीक्षा फल निकलने पर मैं ही मैं दिखाई पड़ता। यह कोई असम्भव बात नहीं थी, परीक्षक बड़ा आदमी होता है और सुना है, बड़े लोगों के 'दिल दरयाव' में अक़्सर अनायास दया की मौज उठने लगती है।

मैं सोच ही रहा था कि इस पत्र को लिखना शुरू करू कि किसी ने धीरे से मेरे कंधे पर हाथ रखा। मैंने पीछे घूम कर देखा तो एक महाशय को खड़ा पाया। मुझे देख कर आश्चर्य हुआ कि वे और गार्डों की तरह हृदय-हीन नहीं जान पड़ते थे। उनकी दृष्टि में दया और स्पर्श में समवेदना थी।

वे चले गए पर मेरे हृदय में आशा का संचार कर गये। मुझे निश्चय हो गया कि वे मेरे लिये कुछ करेंगे। यही हुआ भी। वे थोड़ी देर में टहलते हुए मेरे पास आये और बड़ी सफाई से एक सोखते का टुकड़ा मेरे पास फेंक कर चल दिये।

मैंने उस सोखते के टुकड़े को बड़ी सावधानी से उलट कर देखा उस में पर्चे के दो सबसे कठिन प्रश्नों के उत्तर उनकी संक्षिप्त विधि के साहित पेंसिल के बहुत हल्के हाथ से लिखे हुए थे। अब क्या था। दो सवाल तो मैंने मार लिए। बाक़ी बच गये चार, कुल छः करने थे।

इनसे कैसे निपटा जाए ? अब आगे की सुध लेनी थी। मेरे ऊपर अकारण कृपा करने वाले गार्ड महोदय भी कहीं खिसक गये थे।

ठीक इसी समय एक ऐसी घटना हुई जिसने मुझ, सच पूछिए, तो क़तरे से दरिया कर दिया। मुझ से कुछ दूर पर मेरे ही स्कूल का एक लड़का बैठा था।

वह यकायक खड़ा हो गया और बड़े उत्तेजित स्वर में अपने पास वाले गार्ड से बोला—मास्टर साहिब, 'यह चौथा सवाल गलत छपा है।' गार्ड ने उसे डाँट कर बैठा दिया। और सभी लोग उसकी बात पर अविश्वास की हँसी हँस पड़े। पर मैंने इस मौके पर बड़ी सावधानी से काम लिया। मैं उस लड़के को खूब जानता था। गणित के ग्रन्थों की सैकड़ों उदाहरणमालायें उत्तरों सहित उसको कण्ठस्थ थीं। ऐसा लड़का बिना कारण किसी प्रश्न को गलत नहीं बता सकता। मुझे विश्वास हो गया कि जब यह कहता है, तब प्रश्न अवश्य गलत होगा। बस, मैंने पन्ना उलट लिया और मार्जिन में प्रश्न नम्बर चार दर्ज करके उसके सामने लिख दिया—'इस प्रश्न के कई बार करने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यह गलत छपा है, इसलिये इसका उत्तर निकालने की आवश्यकता नहीं है।'

बाद को साबित हुआ कि उस लड़के ने ठीक कहा था। प्रश्न वास्तव में गलत छप गया था। सारी यूनिवर्सिटी में दस ही पाँच लड़के इस भेद को जान पाये थे, और उन लड़कों से परीक्षक बहुत प्रसन्न हुआ था। कहना न होगा कि उन्हीं दस-पाँच में से मैं भी एक था।

कहाँ एक सवाल भी पहाड़ हो रहा था, कहाँ चुटकी बजाते मैंने तीन कर लिये। छः में से तीन पास होने के लिये काफी थे। इसलिये

चिन्ता जाती रही और उत्साह बढ़ गया। मैंने सोचा कि जब किस्मत ने चर्राना शुरु किया है, तब उसे चर्राने का काफी मौका देना चाहिये। सम्भव है किसी सूरत से किसी ज्ञानेन्द्रिय द्वारा किसी ओर से, किसी रूप में, किसी प्रश्न पर, किसी समय कुछ भी प्रकाश पड़ जाए तो कुछ और नम्बर बटोर लूँ।

मैं शेष प्रश्नों को बार-बार पढ़ने लगा। सिर्फ पढ़ना भर हाथ लगता था, पर जब भी मैं बार-बार पढ़ने से बाज न आया। एक प्रश्न दशमलव का था, जिसे मैंने दूर से ही प्रणाम कर के छोड़ा। मेरा विश्वास है कि भगवान रामचन्द्र ने बजाय दशानन के दशमलव का संहार किया होता तो अगणित स्कूली छात्रों के धन्यवाद-भाजन बने होते।

दूसरा प्रश्न ब्याज का था, जिससे मैं तुरन्त समझ पाया कि इस जन्म में न कर पाऊँगा। तीसरा सवाल इस प्रकार था—'एक घड़ी तीन बजे चलाई जाती है और ठीक सात बजे वह बन्द हो जाती है। बताओ कि कितनी देर में घड़ी की दोनों सूइयाँ एक दूसरी को किस-किस समय में पार करेंगी ? ऐसे सवालों को करने के लिए अंकगणित में खास तरीका है; जिसे एक बार सीखने की कोशिश करने पर मुझे सौ बार तोबा करना पड़ा था। और किसी वक्त मैं इस प्रश्न की ओर फूटा आँख भी न देखता, पर इस वक्त स्वयं परमात्मा मेरी पीठ पर था और मुझे तदबीरों की फुरहरी सुझा रहा था। जो प्रश्न मेरे लिये भरतपुर के क़िले से भी बढ़ कर था, उसे मैंने आज यों सर किया।

मेरी जेब में घड़ी थी। उसे मैंने निकाला। उसमें बारह बजे थे।

मैंने उसमें तीन बजा दिए और फिर धीरे धीरे सूई घुमाने लगा और देखने लगा कि दोनों सूइयाँ सात बजने तक कहाँ-कहाँ पर मिलती हैं। यों मैंने छः में से चार सवाल कर ही लिए। मूँछें तो उस समय थी नहीं, पर जहाँ होनी चाहियें, वहाँ चमड़ा ऐंठता हुआ मैं उस दिन मकान आया। दो महीने में परीक्षा का फल प्रकाशित हुआ। दुनियाँ ने देखा कि मैं पास हूँ। लोग आश्चर्य में डूब उतराए और उभचूभ हुए। किसी ने अन्धे के हाथ बटेर की कहानी याद की, किसी ने पत्थर पर दूब जमना स्वीकार किया। कई नास्तिकों ने ईश्वर मान लिया। मैंने अपनी पीठ ठोंकी और कहा—जीते रहो। जैसा मेरा राजपाट लौटा, वैसा ईश्वर करे, सबका लौटे।

—अन्नपूर्णानन्द

फिनिक्स में

मैं सम्पादक बनकर फिनिक्स गया था। सन् १९१३ के अंतिम सत्याग्रह में हिन्दी और तामिल भाषियों ने आत्मोत्सर्ग का ऐसा उच्चत्तम परिचय दिया था कि उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिये बापू ने 'इण्डियन ओपीनियन' में हिन्दी और तामिल अंश जोड़ दिया। हिन्दी अंश का काम मुझे सौंपा गया। उससे पूर्व मैं भागलपुर (बिहार) से निकलने वाले मासिक "आर्यावर्त" का सहकारी सम्पादक रह चुका था, इस कारण मुझे अभिमान था कि सम्पादन-कला का मैं एक निष्णात् विद्वान् हूँ। पर फिनिक्स में 'इण्डियन ओपीनियन' के सम्पादकीय विभाग में प्रविष्ट होते ही मेरा सारा अहंकार चूर-चूर हो गया और मुझे पता लगा कि मैं इस कला का अभी ककहरा भी नहीं जानता हूँ। इस समय 'इण्डियन ओपीनियन' के सम्पादकीय विभाग में गांधी जी और पोलक साहब जैसे विश्व-श्रुत पत्रकार काम कर रहे थे। उनके चरणों के पास बैठ कर मैंने सम्पादन-कला की शिक्षा पाई, जो मेरे भावी जीवन में अत्यन्त उपयोगी एवं लाभदायक सिद्ध हुई।

मैं अपनी सारी विद्या-बुद्धि लगाकर लेख तैयार करता, पर जब बापू को दिखाता तो मुझे बहुधा निराश होना पड़ता। वे उसमें से कुछ-न-कुछ दोष ढूँढ़ निकालते और मुझे दोबारा लिखने के लिये विवश करते। एक बार बापू ने जनरल स्मट्स की नीति और सोलमन कमीशन की प्रवृत्ति पर एक आलोचनात्मक अग्रलेख लिखने की आज्ञा दी। मैंने रात-रात जाग करके एक लम्बा और लच्छेदार

लेख लिखा और सवेरे दिखाने के लिए बापू के हाथ में देकर उनका मुख देखने लगा। बापू लेख पढ़ कर पहले तो मुसकाये, फिर गम्भीर होकर बोले—"इसको लिखने में तुमने काफी मेहनत की है अवश्य, पर वह व्यर्थ गई। यह लेख 'इण्डियन ओपीनियन' में अग्र स्थान पाने योग्य नहीं बन पड़ा। इसमें शब्दाडम्बर के घटाटोप में भाव ऐसे प्रच्छन्न हो गये हैं कि वे साधारण हिन्दी पाठक के लिए बोधगम्य नहीं रहे। थोड़े-से-थोड़े शब्दों में अधिक से अधिक बातें कहना ही लेखन-कला की विशेषता है। एक भी फालतू शब्द का उपयोग करना मानों अपनी कलम का दुरुपयोग करना है। जो कुछ कहना चाहो, सीधे ढंग से, सरल शब्दों में, साफ़-साफ़ कहो, उसे शब्दालङ्कार के आवरण से ढको मत।"

"दूसरी बात यह है कि इस लेख में जनरल स्मट्स के विरुद्ध जो बातें कही गई हैं क्या यही बातें तुम उनके मुँह पर कहने का साहस कर सकते हो? यदि हाँ, तो इससे शिष्टाचार का संहार होगा और यदि नहीं तो फिर तुम्हें ऐसी बातें लिखने का क्या अधिकार है? जब किसी के विचार और व्यक्तित्व पर सार्वजनिक हित की दृष्टि से टीका-टिप्पणी करना आवश्यक समझो तो अपने मन में यह कल्पना कर लो कि वह व्यक्ति तुम्हारे सामने बैठा है और जो बात बिना किसी संकोच के तुम उसके मुँह पर कह सकते हो वही बात लिखो भी, उससे एक शब्द भी अधिक नहीं। यह याद रखना चाहिए कि पत्रकार के रूप से तुम जिसकी टीका कर रहे हो, वह टीका उसकी दृष्टि से ओझल नहीं रह सकती। यह भी मत भूलो कि किसी भी नीति, प्रवृत्ति और अभिमत की आलोचना जहाँ जन-हित की दृष्टि से वांच्छनीय है वहाँ

किसी पर व्यक्तिगत ग्राक्षेप करना सर्वथा अनुचित है। यदि किसी का व्यक्तित्व सार्वजनिक हित में बाधक हो रहा हो तो उसकी टीका करना पत्रकार का नैतिक अधिकार है।" बापू का यह सदुपदेश मेरे पत्रकार-जीवन का मुख्योद्देश्य बन गया।

मैंने फिनिक्स में बड़ी शान से अपना काम आरम्भ किया था, क्योंकि मुझे इस बात का अभिमान था कि एक इतिहास-प्रसिद्ध पत्र का सम्पादक कहलाने का सम्मान मुझे प्राप्त है। अधिकाँश आश्रमवासी पत्र के लिए अंग्रेज़ी, गुजराती, हिन्दी और तामिल में टाइप बैठाया करते पर मैं अपनी कुर्सी से हिलना-डुलना पसंद नहीं करता। जब पत्र-मुद्रण का दिन आता और सभी लोग बारी-बारी 'सिलेंडर मशीन' चलाते तब मैं भी संकोच में पड़कर पत्रों की तह लगाने में लग जाता पर मेरी यह स्थिति शीघ्र ही बदल गई। एक दिन बापू मेरी मेज़ के पास आए और यह कह कर चले गये—"तुमको घड़ी-दो-घड़ी टाइप बठाने का काम भी सीखना चाहिए।" बस, उस दिन से मेरी आधी सम्पादकी लुप्त हो गई।

अब मैं कुछ घंटे कम्पोज़ीटर बनकर टाइप सेट करता। इसी से मेरा पिंड नहीं छूटा, अभी भाग्य में कुछ और भी बदा था। वहाँ एक बहुत बड़ी पत्र छापने की 'सिलेंडर मशीन' थी जो पहले स्टीम एंजन से चलती थी। बापू ने एंजिन को तो पैन्शन दे दी और सिलेंडर के चक्र में डंडा लगा कर हाथ से चलाने की व्यवस्था की। उन्होंने अपने लिये यह नियम बना लिया था कि सामने एक घड़ी रख लेते थे और लगातार घंटा-भर स्वयं मशीन का चक्का चलाते थे। इस बीच में कई आदमियों की अदला-बदली हो जाती थी। कोई भी इतनी देर तक

बापू के साथ ठहर नहीं सकता था। मैं चालाकी से काम लेता। जब पत्र छपने लगता तो छपे पत्रों की तह लगाने में जुट जाता। इस प्रकार मैं मशीन का चक्का घुमाने की कड़ी मेहनत से सहज ही बच जाता। मेरी यह कारगुज़ारी बापू की तेज़ निगाह से कब तक छिपी रहती। एक दिन उन्होंने मेरा नाम लेकर पुकारा। मैं सुनकर भी बहरा बन गया और अपने काम में ऐसा व्यस्त बन गया, मानो कुछ सुना ही नहीं। वहाँ सभी नवयुवक मेरी इज्ज़त करते थे। इसलिए मेरे बदले उनमें से एक तरुण दौड़ गया, किन्तु बापू मुझे कहाँ छोड़ने वाले थे! उन्होंने हँसते और ठट्ठा करते हुए युवक से पूछा, "क्या तुम्हीं भवानीदयाल हो?" बेचारा नौजवान लज्जित होकर लौट पड़ा। अब क्या करता? कोई चारा नहीं रहा। लाचार होकर मुझे मशीन का चक्का घुमाने के लिए जाना ही पड़ा। चक्र के डंडे को एक ओर बापू ने पकड़ा और दूसरी ओर मैंने। लगी मशीन चलने। पाँच मिनिट में ही मेरी साँसों ने त्याग-पत्र दे दिया—दम उखड़ने लगा। मेरी अवस्था बापू से छिपी नहीं रही। उन्होंने दयार्द्र होकर पूछा—"थक गये न?"

"नहीं, अभी तो थका नहीं हूँ" कहकर मैंने अपनी कमजोरी छिपाने का यत्न किया और दो-तीन मिनिट और भी चक्का चलाया। पर मेरा दिल ही जानता था कि मेरे दम की क्या गति हो रही थी। आखिर बापू को दया आ गई और उन्होंने मेरी रिहायी कर दी। इस प्रकार फ़िनिक्स में मेरी उन्नति होती गई, एडीटर से कम्पोज़ीटर बना और कम्पोज़ीटर से खासा मज़दूर।

फ़िनिक्स में ही मुझे पहले-पहल साधु चार्ल्स फ्रियर एण्ड्रूज़ के

दर्शन हुए। पहली झाँकी में ही उनके प्रति मेरे हृदय में श्रद्धा उत्पन्न हो गई। उनका बाह्य रूप आरसी की भांति इतना स्वच्छ था कि उस पर उनके हृदय के सारे भाव झलक रहे थे। उनसे परिचय और वार्तालाप होने पर मुझे निश्चय हो गया कि यह कोई साधारण पादरी नहीं है, प्रत्युत् एक ऐसा महापुरुष है जो गरीबों का गर्व, दासता का शत्रु, श्रमिकों का मसीहा, किसानों का कर्णधार, स्वतन्त्रता का सन्देश-वाहक और भारत का भक्त बनकर विश्व में पूजित होगा।

सच बात तो यह है कि अंग्रेज़ों के अन्याय, अधर्मता और अत्याचार देखकर मैं उस जाति को ही घृणा की दृष्टि से देखने लगा था, पर साधु सी० एफ० एण्ड्रूज़ के सत्संग से मुझे अपना विचार बदलने पर बाध्य होना पड़ा। वस्तुतः किसी देश या जाति के न सब व्यक्ति अच्छे ही होते हैं और न सब खराब ही।

"उपजहिं एक संग जल माहीं।
जलज जोंक जिमि गुण बिलगाहीं॥"

जहाँ हिरण्यकश्यप उत्पन्न हुआ था, वहीं प्रह्लाद भी; जिस भूमि पर रावण ने जन्म लिया था उसी पर विभीषण ने भी; जो नगर कंस का जन्मदाता है वही कृष्ण का भी। इसी प्रकार जिस इंगलैंड के गोरे नेटाल में प्रवासी भारतीयों के साथ अमानुषिक अत्याचार कर रहे हैं, उसी इंगलैण्ड ने एण्ड्रूज़ जैसी पवित्रात्मक को प्रवासी भारतीयों की सेवा और सहायता के लिए प्रदान किया है।

उन दिनों दक्षिण अफ्रीका के अंग्रेज़ों के पत्रों में साधु एण्ड्रूज़ की बड़ी कड़ी टीका हो रही थी। बात यह हुई कि जब एण्ड्रूज़ डरबन में जहाज़ से उतरे तो पोत-स्थान पर उन्होंने प्रवासी भारतीयों की भारी भीड़ पाई। पोलक से परिचय होने पर उन्होंने पूछा—"गांधी जी कहाँ हैं?"

मजदूर के रूप में महात्मा जी वहीं पोलक के पास खड़े थे। इसलिए एण्ड्रूज के पूछने पर बापू ने कहा—"मैं ही गांधी हूँ।" एण्ड्रूज ने झुक कर भारतीय विधि से बापू के चरण छूए और हाथ जोड़ कर नमस्कार किया।

यह दृश्य अंग्रेज रिपोर्टरों के लिए असह्य हो गया। दक्षिण अफ्रीका के पत्रकार-संसार में भूकम्प हो उठा, अंग्रेजों के मर्यादामयंक पर ग्रहन लग गया। वे क्रोधानल में जल-भुनकर खाक हो गये। अंग्रेजी पत्रों में अभिमानी अंग्रेजों को उभारने के लिए इस घटना पर रंग चढ़ाते हुए लिखा गया—"ईसाइयों के धर्म-गुरु कहलाने वाले रेवरेण्ड महोदय गांधी के पैरों पर गिर पड़े, उन्होंने गांधी के चरण भी चूमे और उनके तलवे की धूल उठाकर बड़ी श्रद्धा-भक्ति से अपने माथे पर रगड़ी।"

एण्ड्रूज को इन व्यर्थ व्यंगोक्तियों की परवाह ही कब थी ? वे तो बापू के व्यक्तित्व में अपने प्रभु ईसा मसीह का रूप देख रहे थे। एक दिन डरबन के अंग्रेजों के गिरजाघर में एण्ड्रूज़ साहब प्रवचन करने गये और अपने साथ बापू को भी ले गये पर हिन्दुस्तानी होने के कारण बापू को गिरजे के अन्दर जाने से रोका गया। ईसाई धर्माध्यक्षों की इस वर्ण-विद्वेष मूलक मनोवृति और प्रवृत्ति पर एण्ड्रूज को बड़ा ही विस्मय और विषाद हुआ और उनकी आत्मा गिरजापंथियों से विद्रोह कर उठी। उन्होंने अपने वक्तव्य में स्पष्ट घोषणा कर दी कि "मैं दक्षिण अफ्रीका के सारे गिरजाघरों में मशाल लेकर ढूँढ आया, पर कहीं अपने प्रभु ईसा को नहीं पाया। अन्त में वे मुझे मिले तो सही, पर कहाँ ? प्रभु ईसा के नाम पर निर्मित गिरजों में नहीं, प्रत्युत हिन्दुस्तानी सत्याग्रहियों के उच्च उद्देश्य में उनके सत्य और अहिंसा के संदेश में, उनके त्याग और बलिदान के आदेश में।"

उस समय साधु एण्ड्रूज़ से मेरा जा स्नेह-सम्बन्ध स्थापित हुआ वह उनके जीवन की अन्तिम घड़ी तक अविच्छिन्न रहा। कई बार प्रवासी भारतीयों के प्रश्नों पर परस्पर सैद्धान्तिक मतभेद भी हुआ पर व्यक्तिगत प्रेम-प्रवाह में कोई अन्तर नहीं पड़ा। प्रथम मिलन में ही उनके महान व्यक्तित्व का मुझ पर अमिट प्रभाव पड़ा। उन पर मेरी श्रद्धा हो गई और मुझ पर उनकी प्रीति। मैंने उनके चरित्र में कृष्ण के निष्काम कर्म का, बुद्ध के संयम, सत्य और अहिंसा का; ईसा की दया और क्षमा का अद्भुत संयोग पाया। उनको समझने में मुझ से भूल नहीं हुई थी, क्योंकि कुछ ही वर्षों के अनन्तर हिन्दुस्तान ने उनको 'दीनबन्धु' कहकर पुकारा और संसार ने 'मानवता का पुजारी' कह कर।

—भवानीदयाल सन्यासी

['प्रवासी की आत्म-कथा' से]

सच्चे हिन्दुस्तानी

स्थान—मेवाड़ समय—संध्याकाल

[महाराणा विक्रमादित्य और चाँद खाँ (बहादुरशाह का भाई) राजभवन की वाटिका में घूम रहे हैं]

चाँद खाँ—कितना ख़ुशनुमा है आपका देश !

महाराणा ! कुदरत ने गोया अपनी सारी दौलत यहाँ बखेर दी है। यहाँ की सुबह जिन्दगी का गीत गाते हुये आती है, यहाँ की शाम हमदर्दी की तान छेड़ती हुई जाती है; यहाँ की रात राहत की सेज बिछाती है। तभी तो दुनिया इसे लालच की निगाह से देखती है, तभी तो आये दिन इसे दूर-दूर के शाही-लुटेरों का मुक़ाबिला करना पड़ता है।

विक्रम—असल में चाँद ख़ाँ जी, प्रकृति के ऐश्वर्य को भोगने के लिए खून बहाने की ज़रा भी ज़रूरत नहीं ! वह तो माँ की तरह ग़रीब और अमीर सभी को अपना आँचल हिला कर बुलाती है।

शाहज़ादा साहब ! यह तो स्वार्थ का राक्षस है, जो हमारे हृदय में बैठकर हमसे एक दूसरे के गले पर छुरी चलवाता है।

चाँद खाँ—आप ठीक कहते हैं महाराणा ! हम यह नहीं चाहते कि हमारे भाई भी खावें और हम भी खावें। हम तो यह चाहते हैं कि हमीं खावें और सारी दुनिया भूखी मरे। जब तक हम हाथी पर बैठकर नहीं निकलते और दूसरों को पैदल घिसटते नहीं देखते, तब तक हमें बड़प्पन का मज़ा ही नहीं आता।

विक्रम— मनुष्य का कैसा अधःपतन है। आपके भाई साहब को

गुजरात की बादशाहत से भी संतोष नहीं । उन्हें आपके खून की प्यास है। भाई को भाई के खून का प्यासा देखकर जी चाहता है कि यह सृष्टि एकदम नष्ट-भ्रष्ट हो जाय ।

(एक सामन्त आता है और महाराणा को अभिवादन करता है ।)

विक्रम—क्या है ?

सामन्त—गुजरात के बादशाह का दूत आया है ।

विक्रम—गुजारत के बादशाह का दूत ! अच्छा, भेज दो यहीं

(सामन्त का प्रस्थान)

चाँद ख़ाँ—लीजिये, आ गया मेरे लिए, पैग़ाम !

विक्रम—कैसा पैग़ाम ?

चाँद ख़ाँ—मौत का पैग़ाम !

(दूत का प्रवेश)

विक्रम—कहो क्या है ?

दूत—(पत्र देकर) बादशाह सलामत ने यह फ़रमान भेजा है ।

विक्रम—देखें, क्या लिखा है ? पढ़िए, चाँद ख़ाँ जी, आप ही पढ़िए!

(पत्र चाँद ख़ाँ को देते हैं)

चाँद ख़ाँ—(पत्र पढ़ता है)

महाराणा साहब !

आदाब ! आपने गुजरात के एक बाग़ी को पनाह दी है, यह बाहमी दोस्ताना ताल्लुकात के लिए मुज़िर है। आप उसे मेरे सुपुर्द कर दें, वरना मुझे मजबूरन मेवाड़ पर चढ़ाई करनी पड़ेगी ।

(महाराणा की त्यौरियाँ चढ़ जाती हैं, वे विचार में पड़ते हैं)

चाँद ख़ाँ—(क्रोध पीकर) हूँ , मैं बाग़ी हूँ । महाराणा आप क्यों फ़िक्र करते हैं। मेरे सबब से कोई आफ़त मोल न लीजिए। मुझे जा़ने दीजिए ।

विक्रम—कहाँ ? मरने के लिए ? ऐसा नहीं हो सकता; मेवाड़ में आज तक ऐसा नहीं हुआ। सूर्य पश्चिम से भले ही निकले पर मेवाड़ अपनी आन नहीं छोड़ सकता।

चाँद ख़ाँ—यह मैं जानता हूँ, महाराणा। पर एक जान के लिए मुल्क का मुल्क बरबाद नहीं करना चाहता मुझे इजाज़त दीजिये, मैं लौट जाऊँ।

विक्रम—हरगिज़ नहीं ! मैं अपने हाथों आपको मौत के मुँह में नहीं डाल सकता।

चाँद ख़ाँ—क्या मौत हमेशा मेरा रास्ता भूले रहेगी ? जो एक दिन होना है, यह आज ही होवे और फिर भाई के हाथ की तलवार खाकर मरने में एक खास मज़ा भी तो है।

विक्रम—मैं आपको यह मज़ा लूटने न दूँगा। आज से आपकी इज़्ज़त सारे मेवाड़ की इज़्ज़त है। आपकी ज़िन्दगी सारे मेवाड़ की ज़िन्दगी है। मेरे दोस्त ! दोस्त सुख के दिनों गले में हाथ डालकर हँसने के लिए ही नहीं हैं, विपत्ति के समय एक-दूसरे के दुःख को अपना समझने के लिए भी हैं। दूत, तुम जाओ। बादशाह से कह देना, मुझे खेद है कि मैं उनका हुक्म नहीं मान सकता।

(दूत का प्रस्थान)

चाँद ख़ाँ—एक मुसलमान के लिए इतना बखेड़ा।

विक्रम—क्या कहा ? मुसलमान के लिए ? क्या मुसलमान इन्सान नहीं है ? जाति और धर्म के नाम पर मनुष्यता के टुकड़े न कीजिए।

चाँद ख़ाँ—महाराणा आपके ख़यालात बड़े पवित्र और ऊँचे हैं। पर क्या सब राजपूत इन्हें पसन्द करेंगे ? एक मुसलमान के पीछे हज़ारों

हिन्दुओं का खून !

विक्रम—आप भी मुसलमान हैं और बहादुरशाह भी। फिर एक मुसलमान दूसरे मुसलमान का गला क्यों काटना चाहता है ? वास्तविक अर्थों में धर्म की लड़ाई किसी युग में नहीं हुई। हमेशा एक स्वार्थ से दूसरा स्वार्थ लड़ा है। मैं और आप जब दोस्त बनकर रह सकते हैं, तो क्या सबब है कि मेरे और आपके धर्म भाई-भाई की तरह गले हाथ डालकर रह नहीं सकेंगे ?

चाँद खाँ—लेकिन अपना मज़हब फैलाने की ख्वाहिश !

विक्रम—सफ़ेद झूठ ! मज़हब मनुष्य के हृदय के प्रकाश का नाम है। जो मज़हब का नाम लेकर तलवार चलाते हैं वे दुनिया को धोखा देते हैं। धर्म का अपमान करते हैं। सच्चा वीर वही है, खरा राजपूत वही है, जो न हिन्दुओं के अन्याय का हिमायती है और न मुसलमानों के। वह न्याय का साथी है, व आज़ादी का दीवाना है। उसे अत्याचारी हिन्दू से ईमानदार मुसलमान ज्यादा प्यारा है। वह…………

चाँद खाँ—आप कुछ नई बात कर रहे हैं !

विक्रम—नई बात ! बिल्कुल नहीं। इतिहास के कुछ ही वर्ष पहले के पृष्ठ पलट देखिये। महाराणा संग्रामसिंह जी ने दिल्ली के बादशाह इब्राहीम लोधी के पुत्र महमूद लोधी का साथ दिया ; उसकी तरफ से बाबर से लड़ाई की। मेवाड़ के बादशाह हसन खाँ भी बयाना और सीकरी की लड़ाइयों में उनके सहायक थे। क्या महमूद खाँ और हसन खाँ मुसलमान न थे ? क्या बाबर मुसलमान न था ? फिर ये आपस में क्यों लड़े ? तोमर राजा शिलादि भी तो हिन्दू था, जिसने सांगा जी को धोखा देकर बाबर का साथ दिया और राजपूतों के

ख़िलाफ़ तलवार उठाई। मेरे भाई ! मैं फिर कहता हूँ और सच बात भी यही है कि मज़हब आपस में नहीं लड़ते, कुछ व्यक्तियों के स्वार्थ लड़ा करते हैं। ग़रीब और ईमानदार आदमी हिन्दू हो या मुसलमान, हमेशा अपने पड़ौसियों से मिल-जुल कर रहते हैं और रहेंगे।

चाँद खाँ—आप सच कहते हैं, राणा जी, हिन्दू और मुसलमान दोनों ही हिन्दुस्तानी हैं, और रहेंगे। दोनों को एक होकर रहना पड़ेगा। पर मुसलमान ज़्यादा कट्टर हैं। ज्यादा तंगदिल हैं।

विक्रम—नहीं, यह बात नहीं है। मालवा के बादशाह महमूदशाह को महाराणा कुम्भा ने छः मास तक गिरफ़्तार करके रखा था। पर उन्हीं महमूदशाह ने दिल्ली के बादशाह के विरुद्ध कुम्भा जी की सहायता की, उनके लिए अपनी जान पर खेलकर लड़े। उस समय अगर वे धोखा देते तो क्या अपना बदला नहीं चुका सकते थे ? इतिहास कह रहा है, उस लड़ाई को जीतने का श्रेय कुम्भा जी की अपेक्षा महमूदशाह को ही अधिक था। कैसी उदारता थी उस मुसलमान में। वास्तव में मनुष्यता या पशुता पर किसी धर्म या जाति का अधिकार नहीं है। कुछ आदमियों के गुण और दोष को कौम के माथे मढ़ना एक ऐसी ग़लती है, जिसे लोग गलती नहीं समझते। इसीलिए उसे सुधार नहीं सकते। अच्छा, अब आगे की लड़ाई के लिए सलाह करनी है। अत्याचारों की चुनौती का जवाब देने में मेवाड़ कभी पीछे नहीं रहा। आज भी वह अतिथि-रक्षा के महान् कर्त्तव्य के साथ-साथ रण-धर्म का पालन करेगा।

(दोनों का प्रस्थान)

—हरिकृष्ण प्रेमी

('रक्षाबन्धन' से)

सुब्हाना

लालमंडी से शिकारा (किश्ती) पार करके मैंने देखा शेखबाग़ में लकड़ी के कारखाने (जहाँ हम मिस्त्रियों, आरीकशों और बढ़इयों के साथ खेला करते, उनके औज़ार उठा लिया करते, कभी-कभी कोई बड़ा संदूक तैयार होता तो उसमें छिप जाया करते, वहीं एक बार लकड़ी के तख्तों में कोयले से लकीरें डाल-डाल कर एक बहुत ही मनोरंजक खेल निकाला था) के बदले एक शानदार कोठी बनी हुई है।

कारखाने के पार्श्ववर्त्ती क़बरिस्तान की नीले पुष्प-गुच्छों से ढँकी चार-दिवारी, जिसके पास हम भाई-बहनों ने सर्वप्रथम फ़ोटो खिचवाई थी, बढ़ाकर ऐन कोठी के समीप कर दी गई है। इस विस्तृत अहाते में आज उन पुरातन स्मृतियों का मानों चिह्न-मात्र भी शेष नहीं रहा है। केवल शेख़बाग़, पत्तन की सीढ़ियाँ उतर कर, चारचिनारों की शीतल छाया के बीचों-बीच सफेद मिट्टी से पुते हुए पब्लिक-वर्क्स विभाग का पुराना आफ़िस वृद्ध कर्मयोगी की भाँति, जिसकी शान्ति प्रतापबाग़ के आस-पास लारी वालों के कोलाहल से तनिक भी भंग नहीं होती, ठीक वैसे ही जैसे कि मैं बाल्यकाल से उसे देखती आई हूँ, खड़ा है।

उस ध्यान-मग्न आफ़िस में चिनारों की मरमर-ध्वनि में कुछ क्षण खड़े रहकर ज्योंही बाज़ार की ओर आगे बढ़ी तो मेरा दम जैसे घुटने लगा। इसी समय उमा ने कहा, "यही तो है।" मैंने देखा बरामदे में बड़ा-सा बोर्ड लटका हुआ है—'डा० जे० एन० किचलू', "आँखों के विशेषज्ञ" 'रिटायर्ड हैल्थ आफ़िसर।'

"जीजी, सुभाना ऊपर खड़ा है। यही सीढ़ियाँ हैं ; चलिए।" मैंने ध्यान नहीं दिया, ताज़ी धुली लकड़ी की सीढ़ियों पर नारियल का कार्पेट

बिछा था। हम दोनों ऊपर चली गईं। सिढ़ियों के समाप्त होते दो कमरे आमने-सामने दिखाई दिये, दाएँ हाथ डाक्टर जे० एन० किचलू और बायीं ओर उनके सुपुत्र ए० बी० किचलू दाँतों के डाक्टर का नाम लिखा हुआ था।

आदायगी के साथ बायीं ओर के कमरे का पर्दा हटाते हुए एक बूढ़े व्यक्ति ने कहा, "भीतर बैठिए, डाक्टर साहब अभी आते होंगे।" साथ ही एक क्षण बाद आश्चर्य-चकित, किन्तु नम्र स्वर में मेरी ओर देखकर कहा—"बहुत मुद्दत के बाद देखा महाराज, पछाना नहीं। राजी हैं बीबी जी, बहुत बड़ा हो गया।"

"सुभाना, मैं सचमुच बड़ी हो गई हूँ।" और मुझे सुभाना की टूटी-फूटी पंजाबी बोली पर हँसी हो आई।

हम दोनों बैंच पर बैठ गईं। कमरे का वातावरण डाक्टरी ढँग का होते हुए भी मुझे अरुचिकर प्रतीत नहीं हुआ। कारण एक तो पूर्व की ओर खुली खिड़की में से वही ऑफ़िस की पुरानी इमारत नज़र आ रही थी। सफेद चिनार के वृक्षों की ओर जेहलम नदी को स्पर्श करती प्रातःकालीन पवन की सुगन्धि कमरे में फैल रही थी। दूसरे, डाक्टर साहब मेरे पिता जी के पुराने मित्र हैं। मैं उन्हें सदैव चाचा जी कहा करती हूँ।

"सुभाना, घोड़ी किधर गया ?" उमा ने मेरे कुछ भी पूछने से पहले ही प्रश्न कर दिया, यद्यपि वह सुभाना को मुझसे बहुत कम जानती है। जान-बूझकर ही मैंने सुभाना से कोई प्रश्न नहीं किया, क्योंकि मुझे अभी तक याद है, सुभाना उन दिनों काफ़ी मग़रूर व्यक्ति था ; और कुछ लड़ाका भी। स्टेट में हेल्थ-आफ़ीसर के साथ सफेद लट्ठे के वस्त्रों में पूरी शान के साथ घण्टी बजा-बजाकर

श्रीनगर के तंग गली, मुहल्लों, बाज़ारों में टाँगा चलाने की नौकरी कुछ कम नहीं होती। घर के नौकरों-चाकरों तथा साधारण लोगों की तो बात क्या, म्यूनिसिपैलिटी जमादारों, भिश्तियों पर भी उसका काफ़ी रौब था। एक-दो बार टाँगे की घण्टी यूँ ही बजा देने पर जो डाँट उससे मैंने सुनी थी, उसी के कारण आज भी बोलने का साहस नहीं हुआ। केवल ख़ैरी (डाक्टर साहब के बच्चों की नौकरानी) के साथ उसकी मित्रता थी, क्योंकि वह भी सुभाना की तरह······

मुझे वह दिन याद करके बहुत हँसी आई जब स्वर्गीया कौशल्या—डाक्टर साहब की बड़ी लड़की हमारे घर रात तक खेलने में देर कर देती तो सुभाना और ख़ैरी दोनों बारी-बारी उसे लेने आते। ख़ैरी को तो कौशल्या फ़िर भी 'मोटी—राक्षसी चली जा', कहकर भाग आती, किन्तु सुभाना की एक नज़र में ही कौशल्या के होश गुम हो जाते। तब हम लोग कौशल्या को चिढ़ाया करते, "आया है सिपाही !"

हाँ तो आज सुभाना की अवस्था एवं चाल-ढ़ाल का ऐसा दयनीय परिवर्त्तन देख कर भीतर ही भीतर मुझे क्लेश एवं आश्चर्य हुआ; मैली सी सलवार, गर्म पट्टी का फटा कोट, गिरती हुई पगड़ी, झुर्रीदार सूखा-सा चेहरा।

"सुभाना घोड़ी कहाँ है ? बेच दी क्या ?" उमा ने पुनः प्रश्न किया। मेरा अनुमान है, टाँगा डाक्टर साहब का था और घोड़ी सुभाना की अपनी।

सुभाना का चेहरा एकदम उतर गया और वह झाड़न लेकर मेज़ पोंछने लगा। उमा ने पुनः दुहरा कर पूछा, "सुभाना घोड़ी मर गई क्या ?"

"मेरा—मेरा नसीब खोटा है। हाँ-हाँ मर गई", वह बोला और उसका कण्ठ एक बारगी रुद्ध हो गया। संकेत से हाथ ऊपर उठाकर "इतना—इतना बड़ा-बड़ा तीन लड़की बीबी जी!" और फफक–सा उठा। मेरे जी में उसकी वह भर्राई सी आवाज तीक्ष्ण तीर सी चुभ गई।

"और घर वाली भी।" इसके आगे वह बोल न सका। आँखों के इशारे और चेहरे की बनावट ने ही प्रकट कर दिया कि सुभाना का घर-बार उजड़ चुका है। उसके मोटे-मोटे आँसू फूट आये। बोला नहीं जाता था, किन्तु इस अवस्था में भी सुभाना के कान चौकन्ने थे। बार-बार पर्दा हटाकर देखता था। कहीं मालिक तो नहीं आ रहे हैं।

कठिनता से आँखें पोंछीं और कहा, "अब मैं सात बच्चों का बाप होता।" वृद्ध ने अपने दुःख को छिपाने की भरसक चेष्टा की और पुनः मेरी ओर दृष्टि डालकर कहा, "आपका माई जब छोटे-छोटे बच्चे को छोड़ गया। मैंनू सब याद है बीबी जी और शलोजी (कौशल्या को वह शलो पुकारता था), दुनिया में कुछ नहीं। बस दुःख-सुख, प्यार—परमात्मा उनका स्वर्ग में भला करे। कैसा मीठा मैंनू दिया करती थी। कभी लड्डू, कभी मिठाई। मैं नमक हराम नहीं हूँ।" उसके भाव अस्त-व्यस्त बिखर रहे थे पर मैंने जान लिया, उसे भी वह दिन याद आ रहे हैं। मेरी स्वर्गीया जननी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करनी चाहता है।

उसकी आन्तरिक व्यथा का प्रवाह एक तेज धारा के समान फूट रहा था जिसके छींटे मेरे मानस पर भी पड़ने लगे—

"डाक्टर साहब को परमात्मा ज़िन्दा रक्खे। जद उन्होंने पेन्शन

पाया और मोटर ले लिया, तब मैंने कहा कि हम दूसरी जगह चला जाए पर डाक्टर साहब ने और किधर काम करने नहीं दिया, इधर अपने काम में फिर लगा लिया।"

"लेकिन, लेकिन किसके लिए बीवी जी ?" उसकी आँखों में पुनः मर्मान्तक पीड़ा वेग से छलछला उठी, "सुख नहीं—सुख नहीं !"

क्षण-भर के लिए मेरे जी में हो आया कि उसकी अपनी बच्ची की तरह बन, अपने आँचल से उसके आँसू पोंछ डालूँ, 'बाबा न रो ! बाबा मत रो !' कहकर अथवा दुःख में साथ दे जोर से रो पड़ूँ। वह एक बार फिर कह उठा, "अगर कोई सुन लेता है तो अपना दुःख-सुख खोलकर बैठ जाता हूँ। कुछ जी हल्का हो जाता है। नहीं सब कड़वा है। बीवी जी, कुछ अच्छा नहीं लगता।"

और वह जबरन आँखों को पोंछता हुआ पर्दे से बाहर होकर गया। किन्तु तब भी मुझे पर्दे के बाहर से उसके रोते हुए उच्छ्वासों—उसके जीवन के सूनेपन की झलक आती रही। जब वह संध्या के समय सिर लटकाये सूनी अंधियारी कोठरी में जा तारे गिनता होगा, तब उसे हुक्का भर कर लाने के लिए अपनी राहिती—मुक्ति—माली की परछांई नज़र आती होगी ; जब वह अकेला ही साग-भात खाने की व्यवस्था करता होगा ; रोज़े के दिनों में बाँह में बाँह डाले जेहलम नदी के किनारे जब वह माझियों की कन्याओं के गीत सुनता होगा। हाय ! अस्थिर संसार !

इसी समय डाक्टर साहब ने प्रवेश किया और सुभाना ने लपकर झाड़न उठाया और उनके बूट झाड़े।

सीढ़ियों में से ही बूटों की आहट पा मैंने भी अपनी गीली

आँखें पोंछ ली थीं।। डाक्टर साहब ने बैंच के पास पहुँचते ही मेरा सिर दोनों हाथों से पकड़कर हिलाया और कहा, "पगली, यहाँ क्यों बैठी हो ?"

मैंने कहा, "चाचा जी आपने ही तो कल कहा था कि आँखें दिखलाने के लिए डिस्पेन्सरी में आना।"

—सत्यवती मलिक

['दो फूल' से]

काश्मीर में बारह दिन

मैं पहाड़ों और उस तंग घाटी से, जिसमें दरिया जेहलम नीचे की ओर तेज़ी से बह रहा था, बाहर निकल आया और सामने काश्मीर की घाटी नजर आने लगी। सामने देवदार के पतले-पतले वृक्ष पहरेदार की तरह खड़े स्वागत कर रहे थे। पास ही चिनार के शानदार विशाल वृक्ष थे जो सदियों से वहाँ खड़े थे। खेतों में काश्मीर की सुन्दर स्त्रियाँ और बच्चे काम कर रहे थे।

हम श्रीनगर पहुँचे। वहाँ सब जगह पुराने मित्रों ने हमारा स्वागत किया। हम दरिया में ऊपर की तरफ़ एक बढ़िया नाव में बैठ कर गये। पीछे-पीछे बहुत से शिकारे आ रहे थे और दरिया के दोनों किनारों के मकानों में स्त्री-पुरुष और बच्चे बहुत खुश दीख पड़ते थे। मुझ पर जो प्रेम की बौछार की गई उससे मेरा हृदय इतना प्रभावित हुआ कि उतना पहले शायद ही कभी हुआ हो, और ज्योंही श्रीनगर का दृश्य मेरी आँखों के सामने से गुज़रा मेरा दिल इतना उमड़ आया कि मैं कुछ बोल न सका। पीछे की तरफ़ 'हारी पर्वत' था और सामने कुछ फ़ासले पर 'शंकराचार्य या तख्तेसुलेमान नज़र आता था। मैं काश्मीर के अन्दर पहुँच गया था।

मैंने काश्मीर में बारह दिन गुज़ारे। इस अरसे में कुछ दूर ऊपर अमरनाथ की घाटी तक और लिद्दर घाटी से ऊपर कोलोहाई ग्लेशियर तक गये। हमने मार्तण्ड के प्राचीन मन्दिर के दर्शन किए और बिजबिहारा के प्रतिष्ठित चिनार-वृक्षों के

नीचे भी बैठे, जो कि पिछले चार सौ वर्षों में खूब फैल-फूल गये हैं। हम मुग़ल बाग़ में इधर-उधर घूमे और कुछ देर के लिए पुराने शानदार ज़माने में पहुँच गये। हमने चश्मेशाही का मज़ेदार जल पिया और डल झील में थोड़ी देर तैरे। काश्मीर के होशियार कारीगरों की सुन्दर दस्तकारी को भी देखा। बहुत-से जलसों में शरीक हुए, भाषण दिये और सब प्रकार के लोगों से मिलना-जुलना हुआ।

इस प्रदेश में जहाँ एक तरफ प्रकृति के सौन्दर्य और प्राकृतिक देन की बहुलता है, वहाँ नितान्त ग़रीबों का राज्य भी है और पेट भर खाने के लिए लोग बराबर संघर्ष करते रहते हैं। काश्मीर के स्त्री-पुरुष देखने में सुन्दर और बातचीत करने में प्यारे लगते हैं। वे होशियार और अच्छे दस्तकार भी हैं। उनकी भूमि उपजाऊ और सुन्दर है। फिर भी उनमें इतनी भयानक ग़रीबी क्यों है?

जब-जब मैं काश्मीर के सौन्दर्य की आनन्दमयी कल्पना में डूबता था, मुझे यहाँ की गरीबी का चित्र बार-बार चोट पहुँचाता था। मुझे आश्चर्य होता था कि जब यहाँ प्रकृति इतनी दयालु है तो यहाँ के लोग इतने ग़रीब क्यों हैं? नहीं जानता कि काश्मीर में कौन-कौन से खनिज पदार्थ या अन्य प्राकृतिक साधन हैं। मैं सोचता हूँ कि वैसे पदार्थ या साधन इस देश में बहुत हैं और पहला काम यह होना चाहिये कि इन साधनों का निरीक्षण किया जाय।

लेकिन अगर यह भी मान लिया जाय कि अतिरिक्त साधन यहाँ नहीं हैं तो भी वर्तमान साधन लोगों के जीवन-माप को ऊँचा उठाने के लिए काफ़ी हैं, बशर्ते कि इन साधनों को व्यवस्थित और संगठित आधार पर काम में लाया जाय। यहाँ बहुत-सी ऐसी सस्ती चीजें

मिलती हैं जिनसे बहुत-से छोटे-बड़े उद्योग-धन्धे चलाये जा सकते हैं। ग्रामोद्योग और दस्तकारियों को बढ़ाने के लिए यहाँ पर्याप्त क्षेत्र है। फिर सैर-सपाटे के लिए काफी लोग यहाँ आते-जाते रहते हैं, जिसके लिए काश्मीर एक आदर्श जगह है। यह भारत की ही नहीं, अपितु एशिया-भर की क्रीड़ा-स्थली बनने योग्य है।

मैं काश्मीर में जहाँ-जहाँ गया, स्त्रियों ने मेरा भाई या बेटे के रूप में स्वागत किया। उनकी आँखों में प्रेम देख कर मेरा हृदय गद्गद् हो जाता था। मट्टन में एक वृद्ध काश्मीरी स्त्री ने मुझे आशीर्वाद दिया और जैसे माँ बेटे का मस्तक चूमती है, उसने भी मेरा मस्तक चूमा।

हमने श्रीनगर में साढ़े तीन दिन गुज़ारे और फिर ऊपर की घाटियों में एक सप्ताह आराम किया। श्रीनगर के आस-पास की जगह इतनी रमणीक है कि मैं वहाँ बहुत दिनों तक ठहर सकता था, लेकिन मुझे तो पहाड़ों, चट्टानों के तंग रास्ते और ग्लेशियर देखने की तीव्र लालसा थी। मैं चाहता था कि अपने दिमाग़ में ज्यादा-से-ज्यादा अनुभव और भावनाओं का संग्रह करूँ ताकि फुरसत के समय याद करके इसके चित्र फिर सामने खड़े करके आनन्द ले सकूँ; लेकिन श्रीनगर में इतनी मुलाकातें और सभाएँ हुई कि ज़िन्दगी का पुराना ढर्रा-सा ही चलता रहा। हम बेरीनाग, अच्छाबल, अनन्त-नाग (इस्लामाबाद) और मट्टन (मार्तण्ड) आदि स्थानों पर गये। मौसम अच्छा नहीं था। वर्षा के होते हुए भी बहुत से लोग हमारा स्वागत करने के लिए जमा हो जाते थे और प्रायः वर्षा में ही उन्हें दो-चार शब्द मुझे कहने पड़ते थे। जब मैं शाम को पहलगाम पहुँचा तो थककर चूर हो गया था और भीग गया था। पिछली बार कई वर्ष पहले जब मैंने पहलगाम देखा, उस वक्त से अब यह बहुत बढ़ गया

था और केवल एक पड़ाव-जैसा नहीं रह गया था।

अगले दिन हम फिर वर्षा में भीगते हुए अमरनाथ सड़क पर चंदनवाड़ी गए। कुछ दूर घोड़े पर और कुछ दूर पैदल चले। हमारे कई साथियों को वर्षा के कारण यह सफ़र अच्छा नहीं लगा और वे थके हुए और परेशान लौटे; लेकिन मुझे मुँह पर वर्षा के थपोड़ों से बड़ा आनन्द मिला और उस पहाड़ी नाले का दृश्य, जिसके साथ-साथ हम चल रहे थे, बड़ा रोचक प्रतीत हुआ। अपनी तमाम पार्टी को चन्दनबाड़ी छोड़ कर मैं एक मित्र के साथ कुछ मील ऊपर तक गया। मुझे इस बात का दुःख हुआ कि समय की कमी के कारण हम लोग शेषनाग की सुन्दर झील तक, जो कि अमरनाथ के रास्ते में अगला पड़ाव है, नहीं पहुँच सके।

हम उसी रोज़ चन्दनबाड़ी से पहलगाम वापिस लौट आये और अगले दिन सवेरे ही हमारा क़ाफ़िला लिद्दर नदी के किनारे-किनारे लिद्दरवट की तरफ़ बढ़ा। आड्ड ठहरने के लिए एक बड़ी रमणीक जगह है। कुछ देर वहाँ ठहर हम लोग आगे लिद्दरवट की ओर बढ़े। मौसम साफ़ हो गया था और हम आसमान की तरफ आशाभरी निगाहों से और बेक़रारी से देखते थे, क्योंकि अगले रोज़ हमें कोलो-हाई ग्लेशियर पहुँचना था।

यह बड़ा अच्छा हुआ कि आज का दिन खुला रहा, क्योंकि रास्ता बड़ा खराब था और पहाड़ी टीलों में से और पहाड़ी नदी-नालों में से गुज़र कर जाता था। आखिरकार हम ग्लेशियर पर पहुँच गये और दोपहर का खाना वहीं खाया। गड्ढों और दरारों से बच कर हम कुछ दूर तक ऊपर चढ़े, पर ज्यादा दूर नहीं जा सके और न बहुत देर तक ही ठहर

सके; क्योंकि हमें जल्दी ही वापिस लिद्दरवट पहुँचना था। लेकिन ग्लेशियर की इस थोड़ी देर की यात्रा ने ही मुझे बड़ा खुश कर दिया और मेरी एक बहुत पुरानी इच्छा पूरी हो गई।

लौटते समय हम बहुत थक गए थे और बहुत रात गये अपने स्थान पर पहुँचे। बादशाह खान विशेष रूप से थक गये थे, क्योंकि वे ज़्यादातर पैदल ही चलते थे, जबकि और लोग यथासम्भव घोड़ों पर चलते थे। लेकिन वे थके हों या न हों, उनका क़दम कभी धीमा नहीं पड़ा और हम में से जो लोग उनके साथ चलना चाहते थे वे हाँप उठते थे और उन से पीछे रह जाते थे। इन पहाड़ी रास्तों में चलते हुए एक छः फुट दो इंच लम्बे पठान की छाप मेरे मन पर बड़ी गहरी पड़ी और खान साहब का वही चित्र मेरी आँखों के सामने बार-बार आया करता है।

कोलोहाई ग्लेशियर की यात्रा में बहुत सी छोटी-मोटी घटनाएँ हुईं। हमारी पार्टी में से क़रीब हरेक घोड़े पर से नीचे गिरा या वैसे ही पत्थरों पर ठोकर खा गया, या ग्लेशियर पर लुढ़क गया, लेकिन मैं ही ऐसा खुशक़िस्मत था जो एक बार भी नहीं गिरा।

अगले दिन हमने लिद्दरवट में आराम करना तय किया, लेकिन पूरी तरह आराम न कर सके, क्योंकि हम उस रास्ते पर घूमने निकल गये, जो कि पहाड़ों में से गुज़र कर सिन्ध घाटी' तक पहुँचता है। मैं इसी रास्ते से जाना चाहता था; क्योंकि इस रास्ते पर सोनामर्ग की बहुत सुन्दर घाटी आती है। लेकिन वहाँ तक पहुँचने के लिए बहुत ऊँचे दर्रे से गुजरना पड़ता है, जोकि उस मौसम में बहुत मुश्किल काम था। हमारी पार्टी बहुत बड़ी थी और हमारे पास समय भी बहुत कम था। इस दर्रे का नाम 'यमहेर' है, अर्थात् यम की सीढ़ी।

इस पर इतनी चिकनी वर्फ़ रहती है कि उस पर फिसलने से आदमी जल्दी ही यमलोक में पहुँच जाता है।

इसलिए हमने 'सिन्ध घाटी' तक पहुँचने का इरादा छोड़ दिया, लेकिन कुछ दूर तक गए और गूज़रों की कुछ बस्तियों को देखा। ये गूजर लोग खानाबदोश होते हैं, जो गर्मियों के दिनों में अपने पशुओं को चराने के लिए इतने ऊपर चले आते हैं। ये लोग अपने लिए अस्थायी आश्रय बना लेते हैं, जिनमें न वर्षा पहुँच सकती है और न ठंडी हवा। कभी-कभी ये लोग बाहर को निकली चट्टानों के नीचे रह कर ही गुज़ारा कर लेते हैं।

गूज़रों के कैम्पों में हम लोग गये। मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि हमारा सब जगह स्वागत किया गया। आम तौर पर ये लोग अपरचित लोगों से अच्छी तरह पेश नहीं आते, क्योंकि इनकी निगाह में अजनबी या शहर का रहने वाला शोषण करने वाला ही होता है। वह इन से दूध की बनी हुई चीज़ें बहुत सस्ती खरीद लेता है और शहर की बनी हुई चीज़ें बहुत मंहगी बेचता है और इस तरह ये हमेशा उस के क़र्ज़ में दबे रहते हैं। ये लोग सीधे-साधे होते हैं। न लिखना जानते हैं न पढ़ना और न हिसाब करना। शहर से आने वाले लोग जो दाम उनको देते हैं वे उनको गिन भी नहीं सकते। उनके साथ हमेशा धोखा होता है और उनका हमेशा शोषण होता रहता है, जिससे वे बहुत ग़रीबी में रहते हैं।

इन गूजरों की स्त्रियाँ बिना किसी झिझक या शर्म के पुरुषों की तरफ़ देखती थीं। एक कैम्प में तो कुछ आश्चर्य भी हुआ जबकि एक स्त्री ने आकर मेरा हाथ पकड़ कर स्वागत किया। उसने हमें रोटी और

सब्ज़ी, जो वह पका रही थी, खाने के लिए निमन्त्रण दिया। उसाक वह ढंग और व्यवहार इतना अच्छा था कि मुझे लगा जैसे किसी ऊँचे घराने की स्त्री मुझे बुला रही है।

पहलगाम में रात-भर ठहर कर हम श्रीनगर मोटर में पहुँचे। रास्ते में हमने मार्तण्ड का पुराना मन्दिर देखा, जिसके अन्दर स्थानीय मित्रों ने शानदार जलपान का इंतज़ाम कर रखा था। वहाँ से अनन्तनाग या इस्लामाबाद गए, जहाँ एक या दो सभाएँ हुईं। एक सभा बिज-बिहारा के विशाल चिनार वृक्षों के नीचे हुई। जिस मंच पर खड़े हो कर मुझे भाषण देना था, वह बहुत पुराने शाही पेड़ के नीचे था, जिसकी गोलाई कोई ५५ फुट होगी। लोगों का कहना था कि यह पेड़ ४०० साल का पुराना है। जब मैं इस पेड़ की ठंडी छाया में खड़ा था तो मेरी आँखों के सामने पिछले ४०० सालों का इतिहास तेज़ी से घूम गया। इस लम्बे अर्से में इस पेड़ ने न जाने कैसी-कैसी विचित्र घटनाएँ, क्रान्तियाँ और आदमी की मूर्खताएँ देखी हैं। जबकि लोग सुख-दुःख भरा अपना छोटा-सा जीवन पूरा करके चले गये और एक के बाद दूसरी पीढ़ी आती रही यह पेड़ों का राजा चुपचाप खड़ा हुआ लोगों का तमाशा देखता रहा।

हम श्रीनगर वापस आ गये। अपना-अपना सामान बाँधना शुरू किया और एक दूसरे से विदाई लेने लगे। अमरसिंह क्लब में एक पार्टी में शामिल हुए, जहाँ बहुत से पुराने मित्र मिले। अन्त में एक सभा श्रीनगर में हुई, जिसमें सबसे विदाई ली।

अगले रोज़ सुबह हम श्रीनगर से जम्मू की ओर चल पड़े। यह सड़क घाटी को छोड़ कर पीरपंचाल की ओर जा रही थी। ज्यों-ज्यों हम ऊपर चढ़ते गये, वहाँ का विशाल दृश्य हमारी आँखों के सामने आता गया। जब हम सुरंग के नज़दीक पहुँचे तो नीचे घाटी की ओर अन्तिम बार निगाह डाली। वह काश्मीर की घाटी थी, जो दुनिया में सबसे बढ़ कर सुन्दर मानी जाती है और इतिहास और काव्य में जिसका नाम आता है। इसके कुछ हिस्से पर हल्का-सा कुहरा छाया था और हल्की रोशनी के आने से सारा दृश्य बड़ा अच्छा लगता था। बादलों से ऊपर बर्फ़ में ढकी पहाड़ों की चोटियाँ नज़र आती थीं और नीचे घाटी में से जल-प्रवाह की धीमी-धीमी आवाज़ आ रही थी। हमने मन-ही-मन उससे विदा ली और दुःखी दिल से अंधेरी सुरंग में दाखिल हो गए, जो हमें उतने सुन्दर दृश्यों की ओर नहीं ले जा रही थी।

रात को हम जम्मू सड़क पर कुद में ठहरे और वहाँ कुछ मित्रों से मिले। अगले रोज़ हम जम्मू पहुँच गये जहाँ मैदानों की-सी गर्मी थी। जम्मू में हमारा खूब स्वागत हुआ, यहाँ तक कि हम कुछ थक गये, क्योंकि दिन में सूर्य बहुत गर्म था। पहले जलूस में शामिल हुए, फिर मुलाक़ातें कीं और रात को एक सभा हुई। यह सभा एक खुश्क पुराने तालाब में हुई, जिसके इर्द-गिर्द बहुत-सी सीढ़ियाँ थीं, जिन पर लोग बैठ सकते थे। मुझे यह देख कर बड़ा आनन्द हुआ कि इस सभा में हज़ारों स्त्रियाँ भी आईं।

बादशाह खान उसी शाम को पेशावर चले गये, लेकिन शेख अब्दुल्ला और कुछ मित्र हमारे साथ लाहौर तक आए।

काश्मीर के बारह दिन ! तेईस साल के बारह दिन ! जीवन का प्रभावशाली क्षण भी वर्षों के जड़-जीवन से कहीं अच्छा होता है और काश्मीर में बारह दिन बिताना वास्तव में बड़ी खुशक़िस्मती की बात थी। लेकिन काश्मीर फिर वापस बुलाता है। इसका आकर्षण पहले की निस्बत और भी ज्यादा है। काश्मीर का स्वर्गीय जादू-भरा नाद कानों में गूँज रहा है, और उसकी याद दिल को सताती है। जो व्यक्ति इसके जादू में फँस गया है, वह उससे कैसे छुटकारा पा सकता है ?

—[जवाहरलाल नेहरू]
(एक अंग्रेज़ी लेख का अनुवाद)

काश्मीर की प्राचीन महिमा

काश्मीर देश भारतवर्ष के उत्तर में उसके शीर्ष स्थान की तरह है। इस देश के इतिहास और साहित्य में काश्मीर बहुत प्रसिद्ध रहा है। काश्मीर का एक दूसरा नाम शारदा-देश भी है। काश्मीर के प्रसिद्ध कवि बिल्हण ने अपनी सुन्दर मातृ-भूमि को श्रद्धांजलि भेंट करते हुए लिखा था कि "कुंकम-केसर और काव्य-विलास आपस में सगे भाई हैं। शारदा देश को छोड़ कर दूसरी जगह मैंने इसको साथ-साथ नहीं देखा।" उसका प्राकृतिक सौन्दर्य आज भी ज्यों का त्यों बना हुआ है। काश्मीर में जन्म लेने वाला कुंकुम-केसर उस देश की प्राकृतिक शोभा के प्रतीक की भाँति है। पुराणों के अनुसार स्वयं विष्णु ने मत्स्य के रूप में काश्मीर की भूमि पर अवतार लिया और यहीं प्रजापति काश्यप का आश्रम था। जल-प्रलय के समय सब प्राणियों की रक्षा के लिए एक पहाड़ की चोटी पर ही प्रजापति की नाव ने आश्रय लिया था। यह चोटी आज भी नौबन्धन के नाम से प्रसिद्ध है जो पीर-पंचाल की पहाड़ी में है। अथर्ववेद में इसी चोटी का संकेत 'नाव-प्रभ्रंशन' नाम से किया गया है और शतपथब्राह्मण में इसे ही 'मनोरवसर्पण' का नाम दिया गया है। इस पर्वतश्रृंग के पाद-मूल में क्रमसर (वर्तमान कौंसर-नाग) नाम का सरोवर है। यहाँ विष्णु ने अपना चर्म-न्यास स्थापित किया था। वितस्ता के किनारे श्रीनगर से ३२ मील पश्चिम बराहमूल (वर्तमान बारामूला) नाम का तीर्थ है जिसका सम्बन्ध विष्णु के वराह अवतार से बताया जाता है।

काश्मीर के उत्तर में पामीर पर्वत है जिसे प्रचीन समय में कम्बोज

देश कहते थे। आजकल चीन और रूस के राज्य यहाँ मिलते हैं। भारतवर्ष और कम्बोज के बीच का रास्ता व्योपार के लिए बहुत प्रसिद्ध था और काश्मीर के उत्तर-पश्चिम का भाग जो प्राचीन काल में दरद देश कहलाता था, इस यातायात मार्ग की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी थी। पुराने दरद देश को आजकल भी दरदिस्तान कहते हैं। यहाँ के निवासी दरदी कहलाते हैं। दरदिस्तान के उत्तर में हुंज़ा प्रदेश है; यह भी काश्मीर का ही एक भाग है। भारतीय भाषाओं के इतिहास में दरद देश की पैशाची बोली का बहुत महत्त्व है। इसका प्राचीन नाम हंसमार्गायन था। हो सकता है मध्य एशिया की यात्रा करने वाले हंस जाति के पक्षी इसी मार्ग से प्रति वर्ष अपनी यात्रा करते हों।

काश्मीर के पूर्व में तिब्बत का प्रदेश है। भाषा और संस्कृति की दृष्टि से काश्मीर का पूर्वीय भाग या लद्दाख छोटा तिब्बत ही है। विद्वानों के मतानुसार लद्दाख का प्राचीन नाम ललाटाक्ष था जिसका उल्लेख महाभारत में है।

काश्मीर का दक्षिण प्रदेश जम्मू कहलाता है। इसका प्राचीन नाम दार्व था और इसी से मिला हुआ पुंछ (पर्णोत्स) और राजोरी (राजपुरी) का प्रदेश अभिसार कहलाता था जिससे आजकल का हज़ारा नाम बना है। सिन्धु और वितस्ता काश्मीर की प्रसिद्ध नदियाँ हैं। सिन्धु काश्मीर में पहाड़ों पर बहती है। दरद देश में पहुँच कर सिन्धु नदी मैदान में उतरती है और उसी कारण दारदी सिन्धु नाम संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध है। वितस्ता या व्यथ काश्मीर घाटी की सुन्दरतम नदी है। इसी पर्वत-द्रोणी के मध्य में काश्मीर की वुल्लर नामक झील है जो इस घाटी की जल-धाराओं को समेट कर रखने में बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। यह लम्बाई में

बारह और चौड़ाई में छः मील के लगभग है। सामान्यतः इसका विस्तार ७८ वर्ग मील है; किन्तु वर्षाऋतु में बढ़कर १०० मील के लगभग हो जाता है। गहराई कहीं भी १५ फीट से अधिक नहीं है। इस झील का प्राचीन नाम महापद्मसर है। अनुश्रुति है कि महापद्म नाग के नाम पर यह नाम पड़ा था। नीलमत, जोनराज आदि प्राचीन लेखों में यही नाम आता है और आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लिखे थाँग देश के इतिहास में जबकि काश्मीर और चीन राजाओं में परस्पर मित्रता का सम्बन्ध स्थापित हुआ, इस झील को महापद्म का नाम दिया गया है। पीछे इसी का दूसरा नाम उल्लोलसर हुआ जिससे बिगड़ कर आजकल का नाम वुल्लर या वोलर बना। काश्मीर की प्रधान नदी वितस्ता एक ओर से इस झील में प्रविष्ट होकर पश्चिम की ओर फिर इससे निकलती है।

इतिहास की अनुश्रुति के अनुसार प्रियदर्शी अशोक ने काश्मीर मे श्रीनगरी नामक राजधानी की स्थापना की थी। विद्वानों का अनुमान है कि प्राचीन राजधानी श्रीनगरी पाण्डरेठन (पुराणाधिष्ठान) नामक स्थान पर थी और वर्तमान श्रीनगर कालान्तर में उसी प्राचीन नाम से विख्यात हो गया।

सौभाग्य से काश्मीर के प्राचीन इतिहास के साधन-रूप में महाकवि कल्हण की राजतरंगिणी हमें प्राप्त होती है। कल्हण अपभ्रंश भाषा का नाम है जिसका संस्कृत-रूप कल्याण था। कल्हण ने यह इतिहास ११४८-४९ ईसवी में आरम्भ किया और अगले वर्ष उसे समाप्त किया। कल्हण के पिता का नाम चम्पक था। कल्हण भारतवर्ष के चुने हुए अत्यन्त मेधाशाली लेखकों में से एक हैं। उसका दृष्टिकोण अत्यन्त उदार था। शैव होते हुए भी

बौद्ध धर्म के प्रति उनके हृदय में सदाशयता और सहानुभूति का भाव था। कल्हण का जन्म अत्यन्त प्रखर बुद्धि वाले काश्मीरी ब्राह्मणों के कुल में हुआ था; और उनके ग्रन्थ में अनुभव, पैनी सूझ, सहानुभूति, विद्वत्ता और विवेक का एक विलक्षण समन्वय पाया जाता है, जिसके कारण कल्हण की राजतरंगिणी भारतीय साहित्य में अद्वितीय है। राजनीति और समरनीति दोनों का अत्यन्त सूक्ष्म परिचय इस ग्रन्थ में पाया जाता है। ग्रन्थ-लेखक के पिता काश्मीर के राजा हर्ष के निकट-वर्ती थे और इस कारण कल्हण ने अपने उतराधिकार में शासन और राज्यवंश दोनों की बहुत ही गहरी जानकारी प्राप्त की थी। कल्हण अपने पूर्ववर्त्ती इतिहास लेखकों का वर्णन करते हुए सुव्रत, क्षेमेन्द्र, पद्म मिहिर, छविल्लाकर, हेलाराज आदि का नामोल्लेख करते हैं। इन सब ग्रन्थों को आधार मान कर और भी अनेक प्रकार से सामग्री का संकलन करके कल्हण ने राजतरंगिणी की रचना की। ग्रन्थ में ८ तरंग हैं जिनमें क्रमशः गोनन्दवंश, कारकोटवंश, उत्पलवंश, और लोहर वंश के राजाओं का इतिहास है। कल्हण का इतिहास गोनन्द प्रथम से आरम्भ होता है—जो मगध के राजा जरासन्ध का सम्बन्धी था। उसके पुत्र दामोदर ने श्री कृष्ण से संग्राम में मृत्यु पाई। उसकी गर्भवती रानी यशोवती को कृष्ण ने राज्यासन पर प्रतिष्ठित किया। उसका पुत्र गोनन्द द्वितीय महाभारत युद्ध के समय बच्चा ही था; अतएव वह किसी भी ओर युद्ध में सम्मिलित नहीं हुआ। गोनन्द द्वितीय के बाद लगभग ५० राजाओं ने राज्य किया। किन्तु उनकी ऐतिहासिक सत्ता निश्चित रूप से प्रमाणित नहीं है। इसी सूची में कल्हण ने अशोक और उसके पुत्र जलौक का भी वर्णन किया है जिन्होंने काश्मीर पर राज्य किया। अशोक ने काश्मीर में

विहारों और स्तूपों की रचना की थी जिनकी अनुश्रुति काश्मीर में अभी तक पाई जाती है और जिनका उल्लेख चीनी यात्रियों ने भी किया है। इसके अनन्तर कल्हण ने हुष्क, जुष्क और कनिष्क नाम के तीन तुरुष्क-वंशी राजाओं का काश्मीर में राज्य करना लिखा है। यह कुषाण-वंशी राजा थे जिनके विषय में और भी ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। इनके नाम पर कनिष्कपुर, हुष्कपुर और जुष्कपुर तीन नगर बसाये गए। इसके अनन्तर गोनन्द तृतीय से पुनः एक राजवंश चला जिसने १००० वर्ष तक राज्य किया। इसमें भी कल्हण ने पौराणिक अनुश्रुति और ऐतिहासिक तत्त्व दोनों का सम्मिश्रण कर दिया है।

—वासुदेवशरण अग्रवाल

गाँव की याद

उन दिनों गाँव का जीवन आज से भी कहीं अधिक सादा था। जीरादेई और जमापुर दो गाँव हैं, पर दोनों की वस्ती इस प्रकार मिली-जुली है कि यह कहना मुश्किल है कि कहाँ जीरादेई ख़त्म है और कहाँ से जमापुर शुरू है। इसलिए आबादी के लिहाज़ से दोनों गाँवों को साथ भी लिया जाए तो कोई हर्ज नहीं। दोनों गाँवों में प्रायः सभी जातियों के लोग रहते हैं। आबादी दो हज़ार से अधिक होगी। उन दिनों गाँव में मिलने वाली प्रायः सभी चीज़ें वहाँ मिलती थीं। अब तो कुछ नये प्रकार की दुकानें भी हो गई हैं, जिनमें पान-बीड़ी भी बिकती हैं। उन दिनों ऐसी चीजें नहीं मिलती थीं, यद्यपि काला तम्बाकू और खैनी बिका करती थी। कपड़े की दुकानें अच्छी थीं, जहाँ से दूसरे गांवों के लोग और कुछ बाहर के व्यापारी भी कपड़ा ले जाया करते थे। चावल, दाल, आटा, मसाला, नकम, तेल इत्यादि वहाँ सब कुछ बिकता था, और छोटी-मोटी दुकान दवा की भी थी, जिस में हर्र, बहेरा, पीपर इत्यादि की तरह की चीज़ें मिल सकती थीं। जहाँ तक मुझे याद है, केवल मिठाई की कोई दुकान नहीं थी। गाँव में कोयरी लोगों की काफ़ी बस्ती है, इसलिए साग-सब्ज़ी भी काफ़ी मिलती थी। अहीर कम थे, पर आस-पास के गाँवों में उनकी काफ़ी आबादी है, इसलिए दूध-दही भी मिलता था। चर्खे काफ़ी चलते थे। गाँव में जुलाहों की भी आबादी थी, जो सूत लेकर बुन दिया करते थे। चूड़िहार चूड़ियाँ बना लेते। बिसाती छोटी-मोटी चीजें, जैसे टिकुली इत्यादि, बाहर से लाकर बेचते और कुछ खुद भी बनाते।

मुसलमानों में चूड़िहार, विसाती, थवई (राजा), दर्जी और जुलाहे ही थे। कोई शेखसैयद नहीं रहता था। हिन्दुओं में ब्राह्मण, राजपूत, भूमिहार, कायस्थ, कोयरी, कुरमी, कमकर, तुरहा, गोंड, डोम, चमार, दुसाध इत्यादि सभी जाति के लोग बसते थे। मेरा ख्याल है कि सब से अधिक वस्ती राजपूतों की ही है। उनमें कुछ तो जमींदार-वर्ग के हैं, जो पुराने खानदानी समझे जाते हैं और कुछ मामूली किसान-वर्ग के हैं। कायस्थों के ज़ीरादेई में ही पाँच घर थे, जिनमें तीन तो हमारे सगे थे और दो सम्बन्ध के कारण बाहर से आकर बस गये थे।

सब कुछ प्राय: गाँव में ही मिल जाता था; इसलिए गाँव के बाहर जाने का लोगों को बहुत कम मौका आता था। गाँव में हफ्ते में दो बार बाज़ार भी लगता था, आस-पास के दुकानदार भी अपना-अपना माल-सौदा सिर पर अथवा बैल, घोड़ा या बैलगाड़ी पर लाद कर लाते थे। बाज़ार में मिठाई की दुकान भी आ जाती थी और जो चाहते उनको मछली-मांस भी खरीदने को मिल जाते। जिनकी जरूरतें इस प्रकार पूरी नहीं होतीं, वे सीवान जाते। वहीं थाना और मजिस्ट्रेट हैं—कचहरियाँ हैं और दुकानें भी हैं। वह एक कस्बा है, जो देहात के लोगों के लिये उन दिनों बहुत बड़ी जगह का रुतबा रखता था। मुझे याद है कि गाँव में बाहर से सगे सम्बन्धियों के सिवा बहुत कम लोग आया करते थे। मौलवी साहब के यहाँ दो-चार महीने में एक आदमी फारसी की छोटी-मोटी किताबों की एक छोटी गठरी और एक-दो बोतलों में सियाही (आजकल की ब्लू-ब्लैक रोशनाई नहीं) लिए आ जाता था। जब वह आता तो हम बच्चों के कौतूहल का ठीकाना न रहता।

Bharat Bhushan Joshi

कभी-कभी जाड़ों में कोई नारंगी-नींबू की टोकरी लिये बेचने आ जाता तो हम बच्चे इतना खुश होते कि मानो कुछ नायाब मिल गया। एक दिन ऐसा ही एक आदमी आया और मैं दौड़ कर माँ से कहने गया। वहाँ से दौड़कर जो बाहर आ रहा था कि पैर में जोर से किसी चीज की ठोकर लगी, गिर गया। ओठ में चोट आई और खून बहने लगा। बहुत दिनों तक उसका चिन्ह था। एक बार और किसी चीज के लिये दौड़ता हुआ फिर गिर गया था। उसका निशान तो आज तक दाहिनी आँख के नीचे गाल पर मौजूद है। गाँव में फल—आम के दिनों में आम मामूली तरह से, कभी-कभी बाग से केले—मिल जाते थे। चचा साहब, जिनको हम लोग नूनू कहा करते थे, छपरा से कभी-कभी अंगूर लाया करते थे। अंगूर आज की तरह खुलेआम गुच्छों में नहीं बिका करते थे, काठ की छोटी पेटी में रूई के फाहे के बीच में रख कर बिकते थे और दाम भी काफ़ी लगता था। गाँव के लोग केवल आम और केले ही मौसम में पाते थे।

गाँव में दो छोटे-मोटे मठ हैं, जिनमें एक-एक साधु रहा करते थे। गाँव के लोग उन्हे भोजन देते हैं, और वह सुबह शाम घड़ी-घंटा बजा कर आरती करते हैं। आरती के समय कुछ लोग जुट भी जाते हैं। कभी-कभी हम लोग भी जाया करते थे और बाबा जी तुलसीदास का प्रसाद दिया करते थे। रामनौमी और विशेषकर जन्माष्टमी मठ में तैयार होती थी। हम सब बच्चे कागज और पन्नी के फूल काटकर ठाकुर-बारी के दरवाजों और सिंहासन पर साटते थे और उत्सव में शरीक होते थे, ब्रत रखते थे और दधिकांदो के दिन खूब दही-हल्दी

एक दूसरे पर डालते थे। प्रायः हर साल कार्तिक में कोई-न-कोई पंडित आ जाते थे, जो एक-डेढ़ महीना रहकर रामायण, भागवत अथवा किसी दूसरे पुराण की कथा सुनाते थे। जिस दिन पूर्णाहुति होती थी, उस दिन गाँव के सब लोग इकट्ठे होते और कुछ पूजा चढ़ाते। मेरे घर से अधिक पूजा चढ़ती, क्योंकि हम सबसे बड़े समझे जाते थे। अक्सर कथा तो मेरे ही दरवाजे पर हुआ करती थी। उसका सारा खर्च हम को ही देना पड़ता था। जब गाँव में पंचायती कथा होती तब गाँव भर के लोग बारी-बारी से पंडित के भोजन का सामान पहुँचाते, उसमें मेरा घर भी शामिल रहता। हम बच्चे तो शायद ही कथा का कुछ ज्यादा अंश सुन पाते हों, क्योंकि मैं तो समझौते के बाद ही सो जाता, पर जब आरती होती तो लोग जगाते और प्रसादी खिला देते।

मनोरंजन और शिक्षा का एक दूसरा साधन रामलीला थी। वह आसिन में हुआ करती थी। रामलीला करने वाली जमात कहीं से आ जाती और पन्द्रह-बीस दिनों तक खूब चहल-पहल रहती। लीला कभी जमापुर में होती, कभी जीरादेई में। लीला भी बड़ी विचित्र होती। उस में राम-लक्ष्मण इत्यादि जो बनते, कुछ पढ़े-लिखे नहीं होते। एक आदमी तुलसीदास की रामायण हाथ में लेकर कहता—"रामजी कहीं, हे सीता" इत्यादि और राम जी वह दुहराते। इसी प्रकार, जिनको कुछ कहना होता उनको बताया जाता और वह पीछे-पीछे उसे दुहराते जाते। लोगों का मनोरंजन इस वार्तालाप में अधिक नहीं होता। क्योंकि भीड़ बड़ी लगती और सब कारोबार प्रायः १००-२०० गज़ में फैला रहता। मनोरंजन तो पात्रों की दौड़-धूप और विशेष कर लड़ाई इत्यादि के नाट्य में ही होता। उत्तर में राम जी का गढ़ और

दक्षिण में रावण का गढ़ बनता अथवा अयोध्या और जनकपुर बनता। जिस दिन जो कथा पड़ती, उसका कुछ-न-कुछ स्वांग तो होता ही। सब से बड़ी तैयारी राम-विवाह, लंकाकाण्ड के युद्ध और राम जी के अभिषेक—गद्दी पर बैठने के दिन—होती। विवाह में तो हाथी-घोड़े मंगवाये जाते और बरात की पूरी सजावट होती। लंका-दहन के लिए छोटे-मोटे मकान भी बना दिये जाते जो सचमुच जला दिये जाते। हनुमान वानर और निशाचरों के अलग-अलग चेहरे होते जो उनको समय पर पहनने पड़ते और बच्चों को वे सचमुच डरावने लगते। बानरों के कपड़े अक्सर लाल होते और निशाचरों के काले। राम-लक्ष्मण-जानकी के विशेष कपड़े होते और उनके सिंगार में प्रायः डेढ़-दो घंटे लग जाते। लीला सन्ध्या समय ४ बजे से ६ बजे तक होती। राम-लक्ष्मण मामूली लोगों की तरह नहीं चलते। उनके कदम बहुत ऊँचे उठते और लड़ाई में पैंतरे देने की तो उनको ख़ास तालीम दी जाती थी। जिस दिन राजगद्दी होती उसी दिन गाँव-जवार के लोग पूजा चढ़ाते, जो नज़र के रूप में राम जी के चरणों में चढ़ाई जाती। लीला वालों को भोजन के अलावा नगद जो मिलना होता, उसी दिन मिलता। दूसरे दिन फिर राम-लक्ष्मण-जानकी को शृंगार करके बड़े-बड़े लोगों के घरों में ले जाते जहाँ की स्त्रियाँ परदे के कारण भीड़-भाड़ में लीला देखने नहीं जाया करतीं, वहाँ उनकी पूजा होती और उन पर रुपये चढ़ाये जाते।

एक चीज़, जिसका असर मुझ पर बचपन से ही पड़ा है रामायण-पाठ है। गाँव में अक्षर-ज्ञान तो थोड़े ही लोगों को था। उन दिनों एक भी प्राइमरी या दूसरे प्रकार का स्कूल उस गाँव अथवा कहीं

जवार-भर में नहीं था। मौलवी साहब इन लोगों को तीन-चार रुपये मासिक और भोजन पाकर पढ़ाते थे। गाँव में एक दूसरे मुसलमान थे, जो जाति के जुलाहा थे, मगर कैथी लिखना जानते थे। मुडकट्टी हिसाब भी जानते थे, जिसमें पहाड़ा ड्योढ़ा इत्यादि मन-सेर की बिकरी और खेत की पैमाइश का हिसाब शामिल है। उन्होंने एक पाठशाला खोल रखी थी, जिसमें गाँव के कुछ लड़के पढ़ते थे। अक्षर पहचानना तो बहुत थोड़े लोग जानते थे, पर प्रायः प्रति-दिन संध्या के समय कुछ लोग कहीं-न-कहीं मठ में या किसी दरवाज़े पर, जमा हो जाते और एक आदमी रामायण की पुस्तक से चौपाई बोलता और दूसरे सब उसे दुहराते। साथ में झाल और ढोलक भी बजाते थे। जब रामायण का पाठ आरम्भ करते तो वन्दना का हिस्सा जरूर दुहराया जाता। इस प्रकार अक्षर से अपरिचित रहकर भी गाँव में बहुतेरे ऐसे लोग थे, जो रामायण की चौपाई जानते और दुहरा सकते और विशेषकर के वन्दना के कुछ दोहों को तो सभी प्रायः कण्ठस्थ रखते थे।

त्यौहारों में सबसे प्रसिद्ध होली है। उसमें अमीर-गरीब सभी शरीक होते थे। बसंत-पंचमी के दिन से ही होली गाना शुरू होता। उसे गाँव की भाषा में 'ताल उठाना' कहते थे। उस दिन से होली के दिन तक जहाँ-तहाँ झाल-ढोलक के साथ कुछ आदमी जमा होते और होली गाते। कभी-कभी जीरादेई और जमापुर के लोगों में मुक़ाबिला हो जाता और एक गीत एक गाँव के लोग जैसे खतम करते, दूसरे गाँव के लोग दूसरा शुरू करते। कभी-कभी गाँव के आस-पास के दूसरे गाँवों के लोग भी गोल बाँध कर आ जाते और इस प्रकार का मीठा प्रतियोग

बड़े उत्साह से हुआ करता। मुझे याद है कि एक बार दो गाँवों में बाज़ी-सी लग गई और रात भर गाते-गाते सवेरे सूर्योदय के बाद तक लोग गाते ही रह गये और तब उनको कह कर हटाया गया। इस गाने में जो आदमी ढोलक बजाता है, उसे काफ़ी मेहनत पड़ती है और वह पसीने-पसीने हो जाता है। एक गाँव में ढोलक बजाने वाला एक ही आदमी था। वह सारी रात बजाता रहा। उसके हाथों में छाले पड़ गये, पर वह कहाँ रुकने वाला ? गाँव की इज्जत चली जाती। छाले उठे और फूट गए, और इस प्रकार रात भर में कई बार छाले उठे और फूटे, पर उसने गाँव की इज्ज़त नहीं जाने दा। यह बात दूसरे दिन प्रतियोगिता ख़तम होने पर सवेरे मालूम हुई और तब लोगों ने उसकी हिम्मत की सराहना की।

(राष्ट्रपति) राजेन्द्र प्रसाद

['आत्म-कथा' से]

लेने के देने

[होरी और उसके भाई हीरा में अनबन है। भाई ने उसकी गाय को जहर खिलाकर मार डाला है। पोलीस पूछ-ताछ के लिए आई है और हीरा की अनुपस्थिति में उसके घर की तलाशी लेना चाहती है। होरी इस बात को अपने लिए भारी अपमान समझता है और किसी तरह तलाशी को टालना चाहता है। गाँव के मुखिया, चौधरी आदि इस मौके से हाथ रंगना चाहते हैं और थानेदार की सेवा कराके अपनी सेवा भी कराने की सोच रहे हैं। पर होरी की पत्नी धनिया, थानेदार और थानेदार के पिट्-ठुओं की इच्छाओं पर पानी फेर देती है। इस घटना का वर्णन मुन्शी प्रेमचन्द के उपन्यास 'गोदान' में से नीचे दिया जाता है। गाँव के जीवन की कैसी ठीक-ठीक दर्द-भरी तस्वीर खींची है। मुन्शी जी की रचनाओं में जीवन की ऐसी सैंकड़ों झाँकियाँ मिलती हैं।]

होरी ने पटेश्वरी (पटवारी) के पाँव पर सिर रख दिया—भैया, मेरा उद्धार करो। जब तक जीऊँगा, तुम्हारी ताबेदारी करूँगा।

दारोग़ा जी ने फिर अपने वक्ष की पूरी शक्ति से कहा—कहाँ है हीरा का घर? मैं उसके घर की तलाशी लूँगा।

पटेश्वरी ने आगे बढ़ कर दारोग़ा जी के कान में कहा—तलाशी लेकर क्या करोगे हुज़ूर; उसका भाई आपकी ताबेदारी के लिए हाज़िर है।

दोनों आदमी ज़रा आगे जाकर बातें करने लगे।

"कैसा आदमी है?"

"बहुत ही ग़रीब हुज़ूर।"

"सच?"

"हाँ, हुज़ूर, ईमान से कहता हूँ।"

"अरे तो क्या एक पचासे का भी डौल नहीं?"

"कहाँ की बात हुज़ूर? दस मिल जायँ तो हज़ार समझिये। पचास तो पचास जन्म में भी मुमकिन नहीं और वह भी जब कोई महाजन खड़ा हो जायगा।"

दारोग़ा जी ने एक मिनट तक विचार करके कहा—तो फिर उसे सताने से क्या फ़ायदा? मैं ऐसों को नहीं सताता, जो आप ही मर रहे हों।

पटेश्वरी ने देखा, निशाना और आगे जा पड़ा। बोले—नहीं हुज़ूर, ऐसा न कीजिये, नहीं फिर हम कहाँ जायेंगे। आपकी बदौलत हम भी कुछ पा जाते हैं। नहीं, पटवारी को कौन पूछता है?

"अच्छा जाओ, बीस रुपये दिलवा दो, बीस रुपये हमारे दस रुपये तुम्हारे।"

"चार मुखिया हैं इनका खयाल कीजिए।"

"अच्छा आधे-आधे पर रखो और जल्दी करो। मुझे देर हो रही है।"

"पटेश्वरी ने झिंगुरी से कहा, झिंगुरी ने होरी को इशारे से बुलाया ; अपने घर ले गये, तीस रुपये गिन कर उसके हवाले किये और अहसान से दबाते हुए बोले—आज ही कागज लिखा लेना। तुम्हारा मुँह देखकर रुपया दे रहा हूँ, तुम्हारी भलमंसी पर।"

होरी ने रुपये लिये और अंगौछी के कौर में बाँधे, प्रसन्न-मुख आकर दरोगा जी की ओर चला।

सहसा धनिया झपट कर आगे आई और अंगौछी एक झटके के साथ उसके हाथ से छीन ली। गाँठ पक्की न थी। झटका पाते ही खुल गई और सारे रुपये जमीन पर बिखर गये। धनिया नागिन की तरह फुँकार कर बोली—ये रुपये कहाँ लिये जा रहा है, बता ! भला चाहता है, तो सब रुपये लौटा दे, नहीं कहे देती हूँ। घर के परानी रात-दिन मरें और दाने-दाने को तरसें, लत्ता भी पहनने को मयस्सर न हो, और अंजुली भर रुपये लेकर चला है इज्जत बचाने ! ऐसी बड़ी है तेरी इज्जत ! जिसके घर में चूहे लोटें, वह भी इज्जत वाला है। दारोगा तलाशी ही तो लेगा। ले-ले जहाँ चाहे तलाशी। एक तो सौ रुपये की गाय गई, उस पर यह पलेथन। वाहरी तेरी इज्जत !

होरी खून का घूँट पीकर रह गया। सारा समूह जैले थर्रा उठा। नेताओं के सिर झुक गये और दारोगा का मुँह जरा-सा निकल आया। अपने जीवन में उसे ऐसी लताड़ न मिली थी। मगर वह इतनी जल्द हार मानने वाले न थे।

खिसिया कर बोले—मुझे ऐसा मालूम होता है, कि इस शैतान की खाला ने हीरा को फँसाने के लिये खुद गाय को जहर दे दिया।

धनिया हाथ मटका कर बोली—हाँ दे दिया। अपनी गाय थी, मार डाली, फिर? देख लिया तुम्हारा न्याय और तुम्हारी अक्कल की दौड़। गरीबों का गला काटना दूसरी बात है। दूध का दूध और पानी का पानी करना दूसरी बात।

होरी आँखों से अंगारे बरसाता धनिया की ओर लपका, पर गोबर (बेटा) सामने आकर खड़ा हो गया और उग्रभाव से बोला—अच्छा दादा, अब बहुत हुआ। पीछे हट जाओ, नहीं मैं कहे देता हूँ, मेरा मुँह न देखोगे। तुम्हारे ऊपर हाथ न उठाऊँगा। ऐसा कपूत नहीं हूँ। यहीं गले में फाँसी लगा लूँगा।

होरी पीछे हट गया और धनिया शेर होकर बोली—तू हट जा गोबर, देखूँ क्या करता है मेरा। घर में तलाशी लेने से इसकी इज्जत जाती है। अपनी मेहरिया को सारे गाँव के सामने लतियाने से इसकी इज्जत नहीं जाती!……

नेताओं ने रुपये चुनकर उठा लिये थे और दारोगा जी को वहाँ से चलने का इशारा कर रहे थे। धनिया ने एक ठोकर और जमाई—जिसके रुपये हों, ले जाकर उसे दे दो। हमें किसी से उधार नहीं लेना है। मैं दमड़ी भी न दूँगी, चाहे मुझे हाकिम के इजलास तक ही चढ़ना पड़े। हम बाकी चुकाने को पच्चीस रुपये माँगते थे। किसी ने न दिये। आज अंजुली भर रुपये ठनाठन निकाल के दिये। मैं सब जानती हूँ। यहाँ तो बाँट-बखरा होना था; सभी के मुँह मीठे होते। ये हत्यारे गाँव के मुखिया हैं—गरीबों का खून चूसने वाले! सूद-ब्याज, डेढ़ी-सवाई, नजर-नजराना, घूस-घास

जैसे भी हो ; गरीबों को लूटो । उस पर सुराज चाहिए ; जेहल जाने से सुराज न मिलेगा । सुराज मिलेगा धरम से, न्याय से ।

नेताओं के मुँह में कालिख-सी लगी हुई थी। दारोगा जी के मुँह पर झाड़ू-सी फिरी हुई थी । इज्जत बचाने के लिए हीरा के घर की ओर चले ।

रास्ते में दारोग ने स्वीकार किया—औरत है बड़ी दिलेर ।

पटेश्वरी बोले—ऐसी औरत को गोली मार दे ।

"तुम लोगों का काफ़िया तंग कर दिया, उसने। चार-चार तो मिलते ही ।"

"हुजूर के भी तो पन्द्रह रुपये गये !"

"मेरे कहाँ जा सकते हैं। वह न देगा, गाँव के मुखिया देंगे, और पन्द्रह की जगह पूरे पचास रुपये। आप लोग चटपट इन्तजाम कीजिए।…मैं पन्द्रह मिनट का समय देता हूँ। अगर इतनी देर में पूरे पचास रुपये न आये, तो तुम चारों के घर की तलाशी होगी ।"

पटेश्वरी ने तेज होकर कहा—आपको अख्तियार है, तलाशी ले लें। यह अच्छी दिल्लगी है । काम कौन करे, पकड़ा कौन जाय !

"मैंने पचीस साल थानेदारी की है, जानते हो ?"

"लेकिन ऐसा अंधेर तो कभी नहीं हुआ ।"

"तुमने अभी अंधेर नहीं देखा । कहो तो वह भी दिखा दूँ। एक-एक को पाँच-पाँच साल के लिए भिजवा दूँ ।…"

चारों सज्जन चौपाल के अन्दर जाकर विचार करने लगे। फिर

क्या हुआ किसी को मालूम नहीं ; दारोगा जी प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। और चारों सज्जनों के मुँह पर फटकार बरस रही थी।

दारोगा जी घोड़े पर सवार होकर चले, तो चारों नेता दौड़ रहे थे। घोड़ा दूर निकल गया तो चारों सज्जन लौटे, इस तरह मानो किसी प्रिय जन का संस्कार करके श्मशान से लौट रहे हों।

सहसा दातादीन बोले—मेरा सराप न पड़े तो मुँह न दिखाऊँ।

नोखेराम ने समर्थन किया—ऐसा धन कभी फलते न देखा।

पटेश्वरी ने भविष्यवाणी की—हराम की कमाई हराम में जायगी।

झिंगुरीसिंह ने आह भरी—भगवान् न जाने कहाँ है कि यह अंधेर देखकर भी पापियों को दण्ड नहीं देते।

—(स्व०) प्रेमचन्द

('गोदान' से)

[चारों नेताओं को लेने के देनें पड़े थे।

प्रेमचन्द की रचनाओं में गाँव की निर्धनता

प्रेमचन्द जी ने गाँव की निर्धनता के बहुत ही सच्चे, परन्तु दर्दनाक चित्र खींचे हैं। उन्हें पढ़कर कलेजा मुँह को आता है। कोई भी सहृदय व्यक्ति 'प्रेमाश्रम' के किसानों की यह दशा देखकर आँसू बहाये बिना नहीं रह सकता :—

"चारों ओर तबाही छाई हुई थी। ऐसा बिरला ही कोई घर था, जिसमें धातु के बर्तन दिखाई देते हों। कितने घरों में तो लोहे के तवे तक न थे। मिट्टी के बर्तनों को छोड़कर झोंपड़ों में कुछ भी नहीं दिखाई देता था। न ओढ़ना, न बिछौना, यहाँ तक कि खाट भी न थी और वे घर ही क्या थे ? एक-एक दो-दो छोटी तंग कोठरियाँ थीं। एक मनुष्यों के लिए, एक पशुओं के लिये। उसी एक कोठरी में खाना-सोना, उठना-बैठना, सब कुछ होता था। बस्तियाँ इतनी घनी थीं कि गाँव में खुली हुई जगह ही न दिखाई देती थी। किसी के द्वार पर सहन नहीं। हवा और प्रकाश का शहरों में भी इतना अभाव न होगा।"

—प्रेमाश्रम (पृ० ६३०)

इस निर्धनता के कारण बेचारे किसानों की कोई भी कामना कभी पूरी नहीं हो पाती। इसका तो उन्हें अधिक दुःख नहीं होता ; पर अपने छोटे-छोटे अबोध बालकों को एक-एक धेले की चीज के लिये तरसते और मन मार कर रह जाते देख कर वे जीने से मर जाना

लाख दर्जे अच्छा समझते हैं। बच्चों के जिस करुण-क्रन्दन ने महाराणा प्रताप जैसे धीर-वीर और आदर्श पर मर मिटने वाले व्यक्ति को विकल कर दिया था, वही आज इनका जीवन भी दुःखमय बनाये हुए है और जब घुलते-घुलते इनका अन्त समय आ जाता है तब भी इन के मन में यही एक खटक रह जाती है, यही चिन्ता उन्हें व्यथित किया करती है कि हाय ! मेरे बच्चों ने न कुछ खाया, न पहना ! 'प्रेमाश्रम' में अकाल में काल-कवलित पुत्र के लिए डपटसिंह का करुणोत्पादक विलाप देखिये—

"सामने वह लाश देख कर ऐसा जी चाहता है, गले पर गण्डासा मार लूँ। दादा तुम तो जानते हो, कितना सुशील लड़का था। मैंने सैकड़ों गालियाँ दीं, सिर्फ इस पर कि वह मुग्दर की जोड़ी माँग रहा था ; पर उसने ज़बान न हिलाई। हा ! उसकी कोई मुराद पूरी न हुई। न भर पेट खा सका, न तन भर पहन सका। धिक्कार है मेरी ज़िन्दगानी पर। अब यह घर नहीं देखा जाता।"

—प्रेमाश्रम (पृ० २३६)

कितना हृदय-विदारक दृश्य है ! बाप के सामने ही बेटा रोटी-कपड़े के लिये तरस-तरस कर मर जाय और बाप सब कुछ सहकर भी जीवित रहे। हा !

प्रेमचन्द जी ने ज़मींदारों के द्वारा किये गए अत्याचारों और उनके फलस्वरूप किसानों की निर्धनता के अनेक दृश्य दिखाये हैं। उनमें से कुछ यहाँ दिए जाते हैं—

(१) "घर का हिस्सा गिरने-गिरने हो गया था। द्वार पर केवल एक बैल बँधा हुआ था, वह भी नीम-जान। × × ×। अब इस घर के सम्भलने की क्या आशा है ? (शहर में) वह गुलामी करता है, लेकिन भरपेट खाता तो है। केवल एक ही मालिक का तो नौकर है।

यहाँ तो जिसे देखो, वही रोब जमाता है। गुलामी है; पर सूखी ! मेहनत करके अनाज पैदा करो और जो रुपये मिलें, वह दूसरों को दे दो। आप बैठे राम-राम करो। दादा (हमारे किसानों के प्रतिनिधि) का ही कलेजा है कि यह सब सहते हैं। × × × और यह दशा कुछ होरी की ही न थी, सारे गाँव पर यही विपत्ति थी। ऐसा एक आदमी भी नहीं जिसकी रोनी सूरत न हो, मानो उनके प्राणों की जगह वेदना ही बैठी उन्हें कठपुतलियों की तरह नचा रही हो। चलते-फिरते थे, काम करते थे, पिसते थे, घुटते थे, इसलिए कि पिसना और घुटना उनकी तकदीर में लिखा था। जीवन में न कोई आशा है, न कोई उमंग, जैसे उनके जीवन के सोते सूख गये हों और सारी हरियाली मुरझा गई हो। जेठ के दिन हैं, अभी तक खलियानों में अनाज मौजूद है। मगर किसी के चेहरे पर खुशी नहीं है।। बहुत कुछ तो खलियान में ही तुलकर महाजनों और कारिन्दों की भेंट हो चुका है और जो कुछ बचा है, वह भी दूसरों ही का है। भविष्य अन्धकार की भाँति उनके सामने है। उनमें उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझता। उनकी सारी चेतनाएँ शिथिल हो गई हैं। द्वार पर मनो कूड़ा जमा है, दुर्गन्ध उड़ रही है; मगर उनकी नाक में न गंध है, न आँखों में ज्योति। सरेशाम से द्वार पर गीदड़ रोने लगते हैं; मगर किसी को ग़म नहीं। सामने जो कुछ मोटा-झोटा आ जाता है, वह खा लेते हैं, उसी तरह जैसे इंजिन कोयला खा लेता है। उनके बैल चूनीचौकर के वग़ैर नांद में मुँह नहीं डालते; मगर उन्हें केवल पेट में कुछ डालने को चाहिये, स्वाद से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। उनकी रसना मर चुकी है। उनके जीवन में स्वाद का लोप हो गया है। उनसे धेले-धेले के लिए बेईमानी करवा लो, मुट्ठी भर अनाज के लिए लाठियाँ चलवा लो। पतन की वह इन्तहा है, जब

आदमी शर्म और इज़्ज़त को भी भूल जाता है।"

—गोदान (पृ० ५६७-८)

यह है उस समय की दशा का चित्र, जब किसानों के सामने उनके सारे परिश्रम और त्याग के फलस्वरूप उनका खेत काटने को बिल्कुल तैयार खड़ा है। इस समय उन्हें उसी प्रकार हर्ष से फूले न समाना चाहिए जिस प्रकार पहली तरीख को शहर के बाबू अपनी तनख्वाह पाने की आशा में ही ज़मीन पर पैर नहीं रखते। परन्तु हमारे किसान न प्रफुल्लित हैं न उत्साहित; जान पड़ता है, उनके जीवन का सार ही किसी ने खींच लिया है। अपने खेतों की फ़सल से निराश हैं, अपने जीवन से निराश; ऋण से मुक्त होने की आशा से निराश होकर केवल भगवान् के सहारे बैठ रहना ही उन्हें सूझता है। बेचारे करें भी क्या? और उनकी यह दशा किसके कारण है? "जिसे देखो वही आज हमारे किसानों का मालिक बना हुआ है।" क्यों? केवल इसीलिए कि वे जानते हैं, जमींदार भी यही चाहता है—ज़मींदार का रुख देखकर ही वे ऐसा करते हैं।

(२) "अपने विवाहित जीवन के इन बीस वर्षों में (धनिया को) अच्छी तरह अनुभव हो गया था कि चाहे कितनी ही कतर-ब्योंत करो, कितना ही पेट-तन काटो, चाहे एक-एक कौड़ी को दाँत से पकड़ो मगर लगान का बेबाक होना मुश्किल है।"

—गोदान (पृ० २)

इन आपत्तियों के अतिरिक्त दैवी आपदाएँ भी उन्हें घेरे रहती हैं। यों ईति-भीति के अनेक प्रकार हैं; परन्तु प्रेमचन्द जी के किसानों पर वैसी कोई अपत्ति कभी नहीं आती। शीतकाल और ग्रीष्म में वे दुःखी अवश्य रहते हैं; परन्तु 'मालिकों की टेढ़ी निगाह' (प्रेमाश्रम

पृ० २३३) के कारण ही वे इनका सामना करने के योग्य नहीं रह जाते। उदारहण से हमारा कथन स्पष्ट हो जायगा।

शीतकाल की सन-सन बहती हवा में वस्त्र-हीन किसान होरी की दयानीय दशा...

(१) "माघ के दिन थे। महावत लगी हुई थी। घटाटोप अन्धेरा छाया हुआ था। एक तो जाड़े की रात, दूसरे माघ की वर्षा। मौत का-सा सन्नाटा छाया हुआ था। अन्धेरा तक न सूझता था। होरी भोजन करके मुनिया के मटर के खेत की मेंड़ पर अपनी मड़ैया में लेटा हुआ था। चाहता था शीत को भूल जाय और सो रहे; लेकिन तार-तार कम्बल और फटी हुई मिर्जई और शीत के झोंकों से गीली पुआल, इतने शत्रुओं के सम्मुख आने का नींद में साहस न था। आज तमाखू भी न मिला कि उसी से मन बहलाता। उपला सुलगा लाया था; पर शीत में वह भी बुझ गया। बेवाय फटे पैरों को पेट में डालकर हाथों को जांघों के बीच में दबा कर और कम्बल में मुँह छिपाकर अपनी ही गर्म सांसों से अपने को गर्म करने की चेष्टा कर रहा था। पाँच बरस हुए, यह मिर्जई बनवाई थी। धनिया ने एक प्रकार से ज़बरदस्ती बनवा दी थी; वही जब एक बार काबुली से कपड़े लिये थे, जिसके पीछे कितनी सांसत हुई, कितनी गालियाँ खानी पड़ीं। और यह कम्बल तो उसके जन्म से भी पहले का है। बचपन में अपने बाप के साथ वह इसी में सोता था, जवानी में गोबर को लेकर इसी कम्बल में उसके जाड़े कटे थे और बुढ़ापे में आज वही बूढ़ा कम्बल उसका साथी है; पर अब वह भोजन को चबाने वाला दांत नहीं, दुखने वाला दाँत है। जीवन में ऐसा तो कोई दिन नहीं आया कि लगान और महाजन को देकर कभी कुछ बचा हो।"

—गोदान (पृ० १९४)

तरह-तरह की कठिनाइयाँ सहकर, ठोकरें खाकर जीवन से निराश हो जाने वाले किसानों का कितना सच्चा चित्र है। दैवी आपत्तियाँ सहते--सहते और मनुष्यों द्वारा कुचले जाकर उनसे जो आँसू बहते हैं, उनसे विषाद या व्यथित वेदना का बीज बढ़कर वृक्ष हो जाता है। फलतः उनका रोम-रोम वेदना से कराह उठता है। हँसते वे तब भी हैं; परन्तु उनकी हँसी हँसी नहीं, रोना है; उनकी हँसी देखकर हँसने वाले सहृदय व्यक्ति भी रो पड़ते हैं। गोदान के नायक होरी की भी यही दशा है—

धनिया ने परास्त होकर होरी की लाठी, मिर्जई, पगड़ी, जूते, और तम्बाकू का बटुवा लाकर सामने पटक दिये।

होरी ने उसकी ओर आँखे तरेर कर कहा—क्या ससुराल जाना है, जो पाँचों पोशाक लाई है? ससुराल में भी कोई जवान साली-सलहज नहीं बैठी है, जिसे जाकर दिखाऊँ।

होरी के, गहरे साँवले, पिचके हुए चेहरे पर मुस्कराहट की मृदुता झलक पड़ी।

धनिया ने लजाते हुए कहा—ऐसे ही तो बड़े सजीले जवान हो कि साली–सलहजें तुम्हें देखकर रीझ जायँगी।

होरी ने फटी हुई मिर्जई को बड़ी सावधानी से खाट पर रखते हुए कहा—तो क्या तू समझती है, मैं बूढ़ा हो गया? अभी चालीस भी नहीं हुए। मर्द साठे पर पाठे होते हैं।

जाकर शीशे में मुँह देखो। तुम जैसे मर्द साठे पर पाठे नहीं होते। दूध-घी अंजन लगाने तक तो मिलता नहीं, पाठे होंगे। तुम्हारी दशा देख—देखकर तो मैं और भी सूखी जाती हूँ

कि भगवान यह बुढ़ापा कैसे कटेगा । किसके द्वार पर भीख माँगोगे ?

"होरी की वह क्षणिक मृदुता यथार्थ की इस आँच में जैसे झुलस गई । लकड़ी संभालता हुआ बोला—साठे तक पहुँचने की नौबत ही न आने पायगी धनिया ! इससे पहले ही चल देंगे ।"

—गोदान (पृ० ३)

होरी के अन्तिम कथन में कितनी वेदना भरी हुई है । इसका कारण दैवी और मानवी आपत्तियों का सम्मिश्रण ही है, जो १ और १ आपस में मिलकर ११ होने वाली कहावत को चरितार्थ करती हैं । साधारण व्यक्तियों का जीवन ईश्वर के हाथ में है, और दैवी आपत्तियों से उनका किसी तरह निस्तार नहीं हो सकता । पर किसानों का ईश्वर ज़मींदार है; प्रेमचन्द जी के किसानों पर जितना अत्याचार ज़मींदार करता है इतना ईश्वर भी नहीं करता ।

—प्रेमनारायण टंडन

अन्धेर नगरी चौपट राजा

(राजा, मंत्री और नौकर-लोग यथास्थान स्थिर हैं)

सेवक—(चिल्लाकर) पान खाइए महाराज।

राजा—(पीनक से चौंक के घबड़ा कर उठता है) क्या कहा ? सुपनखा आइए महाराज (भागता है)।

मंत्री—(राजा का हाथ पकड़ कर) नहीं, नहीं, यह कहता है कि पान खाइए महाराज।

राजा—दुष्ट, नालायक़ ! नाहक़ हमको डरा दिया; मन्त्री, इसको सौ कोड़े लगें।

मंत्री—महाराज ! इसका क्या दोष है ? न तमोली पान लगा कर देता, न यह पुकारता।

राजा—अच्छा तमोली को दो कोड़े लगें।

मंत्री—पर महाराज, आप 'पान खाइए' सुन कर थोड़े ही डरे हैं आप तो सुपनखा के नाम से डरे हैं, सुपनखा को सज़ा दो।

राजा—(घबड़ा कर) फिर वही नाम ? मन्त्री तुम बड़े खराब आदमी हो। (नेपथ्य में—दुहाई है दुहाई—का शब्द होता है) कौन चिल्लाता है ? पकड़ लाओ। (दो नौकर एक फर्यादी को पकड़ लाते हैं)।

फर्यादी—दोहाई है महाराज, दोहाई है। हमारा न्याय होय।

राजा—चुप रहो। तुम्हारा न्याय यहाँ ऐसा होगा कि जैसा जम के यहाँ भी न होगा—बोलो क्या हुआ ?

फ़र्यादी—महाराज ! कल्लू बनिये की दीवार गिर पड़ी, सो मेरी बकरी उसके नीचे दब गई । दोहाई है, महाराज, न्याय होय ।

राजा—(नौकर से) कल्लू बनियाँ की दीवार को अभी पकड़े लाओ ।

मन्त्री—महाराज, दीवार नहीं लाई जा सकती ।

राजा—अच्छा, उसका भाई, लड़का, मित्र, पति जो हो उसको पकड़ लाओ ।

मन्त्री—महाराज ! दीवार ईंट-चूने की होती है, उसका भाई-बेटा नहीं ।

राजा—अच्छा, कल्लू बनिये को पकड़ लाओ ।

(नौकर लोग दौड़कर बाहर से बनिए को पकड़ लाते हैं)

क्यों बे बनिए ! इसकी लरकी, नहीं बरकी क्यों दबकर मर गई ?

मन्त्री—बरकी नहीं महाराज, बकरी ।

राजा—हाँ, हाँ, बकरी मर गई—बोल, नहीं अभी फाँसी देता हूँ ।

कल्ल—महाराज ! मेरा कुछ दोष नहीं । कारीगर ने ऐसी दीवार बनाई कि गिर पड़ी ।

राजा—अच्छा, इस कल्लू को छोड़ दो, कारीगर को पकड़ लाओ । (कल्लू जाता है, लोग कारीगर को पकड़ लाते हैं) क्यों बे कारीगर, इसकी बकरी किस तरह मर गई ?

कारीगर—महाराज मेरा कुछ कुसूर नहीं, चूने वाले ने ऐसी बोदा बनाई कि दीवर गिर पड़ी ।

राजा—अच्छा, इस कारीगर को बुलाओ, नहीं-नहीं निकालो, उस चूने वाले को बुलाओ ।

(कारीगर निकाला जाता है, चूने वाला पकड़ कर लाया जाता है) क्यों, बे खैर सुपाड़ी चूने वाले ! इसकी बकरी कैसे मर गई ?

चूने वाला—महाराज ! मेरा कोई दोष नहीं, भिश्ती ने चूने में पानी ढेर दिया, इसी से चूना कमज़ोर हो गया होगा ।

राजा—अच्छा, चुन्नी लाल को निकालो, भिश्ती को पकड़ो । (चूने वाला निकाला जाता है, भिश्ती लाया जाता है) क्यों बे भिश्ती ! गंगा-जमुना की किश्ती ! इतना पानी क्यों दिया कि इसकी बकरी गिर पड़ी और दीवार दब गई ।

भिश्ती—महाराज ! गुलाम का कोई कसूर नहीं, कसाई ने मशक इतनी बड़ी बना दी कि उस में पानी ज़ादे आ गया ।

राजा—अच्छा, क़साई को लाओ, भिश्ती को निकालो । (लोग भिश्ती को निकालते हैं और क़साई को लाते हैं ।) क्यों बे क़साई, मशक ऐसी क्यों बनाई कि दीवार गलाई बकरी दबाई ?

कसाई—महाराज ! गड़रिया के टके पर ऐसी बड़ी भेड़ मेरे हाथ वेची कि उसकी मशक बड़ी बन गई ।

राजा—अच्छा क़साई को निकालो, गड़रिया को लाओ ।

(क़साई निकाला जाता है, गड़रिया आता है ।)

क्यों बे ऊख पौंड़े के गड़रिया ! ऐसी बड़ी भेड़ क्यों वेची कि बकरी मर गई ?

गड़रिया—महाराज ! उधर से कोतवाल साहब की सवारी आई सो उसके देखने में मैंने छोटी-बड़ी भेड़ का ख्याल नहीं किया, मेरा कुछ कुसूर नहीं ।

राजा—अच्छा, इसको निकालो, कोतवाल को अभ पकड़ लाओ ।

(गड़रिया निकाला जाता है, कोतवाल पकड़ा आता है)

क्यों बे कोतवाल ! तैंने सवारी ऐसी धूम से क्यों निकाली कि गड़रिया ने घबड़ा कर बड़ी भेड़ बेची जिससे बकरी गिर कर कल्लू बनिया दब गया ?

कोतवाल—महाराज ! महाराज !! मैंने तो कोई कसूर नहीं किया, मैं तो शहर के इन्तजाम के वास्ते जाता था।

मन्त्री—(आप ही आप) यह तो बड़ा ग़ज़ब हुआ, ऐसा न हो कि यह बेवकूफ इस बात पर सारे नगर को फूँक दे या फाँसी दे ! (कोतवाल से) यह नहीं, तुमने ऐसे धूम से सवारी क्यों निकाली ?

राजा—हाँ-हाँ, यह नहीं, तुमने ऐसी धूम से सवारी क्यों निकाली कि उसकी बकरी दबी ?

कोतवाल—महाराज, महाराज !

राजा—कुछ नहीं ; महाराज, महाराज। ले जाओ कोतवाल को अभी फाँसी दो। दरबार बरखास्त।

(लोग एक तरफ़ से कोतवाल को पकड़ कर ले जाते हैं, दूसरी ओर से मन्त्री को पकड़ कर राजा जाते हैं)।

—(स्व०) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

दौड़-धूप

मेरा जीवन सपाट, समथल मैदान है, जिसमें कहीं-कहीं गढ़े तो हैं; पर टीलों, पर्वतों, घने-जंगलों, घाटियों और गड्डों का स्थान नहीं है। जो सज्जन पहाड़ों की सैर के शौकीन हैं, उन्हें तो यहाँ निराशा ही होगी। मेरा जन्म संवत् १९३७ में हुआ। पिता डाकखाने में क्लर्क थे, माता मरीज़। एक बड़ी बहिन भी थी। उस समय पिता जी शायद २०) पाते थे। ४०) तक पहुँचते-पहुँचते उनकी मृत्यु हो गई। यों वे बड़े विचारशील, जीवन-पथ पर आँखें खोल कर चलने वाले आदमी थे; लेकिन आखिरी दिनों में एक ठोकर खा ही गये और खुद तो गिरे ही थे, उसी धक्के में मुझे भी गिरा दिया। पन्द्रह साल की अवस्था में उन्होंने मेरा विवाह कर दिया और विवाह करने के साल ही भर बाद परलोक सिधारे। उस समय मैं नवें दर्जे में पढ़ता था। घर में मेरी स्त्री थी, विमाता थीं, उनके दो बालक थे और आमदनी एक पैसे की नहीं। घर में जो कुछ लेई-पूँजी थी, वह पिता जी की छः महीने की बीमारी और क्रिया-कर्म में खर्च हो चुकी थी और मुझे अरमान था वकील बनने का, और एम० ए० पास करने का। नौकरी उस ज़माने में भी इतनी ही दुष्प्राप्य थी, जितनी अब है। दौड़-धूप करके शायद दस-बारह की कोई जगह पा जाता, पर यहाँ तो आगे पढ़ने की धुन थी—पाँव में लोहे की नहीं अष्ट-धातु की वेड़ियाँ थीं, और मैं चढ़ना चाहता था—पहाड़ पर!

पाँव में जूते न थे, देह पर कपड़े न थे। महंगी अलग। १० सेर

के जौ थे। स्कूल से साढ़े तीन बजे छुट्टी मिलती थी। काशी के किंग्स कालेज में पढ़ता था। हैड मास्टर ने फ़ीस मुश्राफ़ कर दी थी। इम्तहान सिर पर था। श्रौर मैं बाँस के फाटक एक लड़के को पढ़ाने जाता था। जाड़ों के दिन थे। चार बजे पहुँचता था। पढ़ा कर छः बजे छुट्टी पाता। वहां से मेरा घर देहात में पाँच मील पर था। तेज़ चलने पर भी श्राठ बजे से पहले घर न पहुँच सकता। श्रौर प्रातःकाल श्राठ ही बजे फिर घर से चलना पड़ता था, नहीं तो वक्त पर स्कूल कैसे पहुँचता। रात को भोजन करके कुप्पी के सामने पढ़ने बैठता श्रौर न जाने कब सो जाता। फ़िर भी हिम्मत बाँधे हुए था।

मैट्रिक्युलेशन तो किसी तरह पास हो गया, पर श्राया सेकेंड डिवीजन में श्रौर किंग्स कालेज में भरती होने की श्राशा न रही। फ़ीस केवल श्रव्वल दरजे वालों की हीं मुश्राफ़ हो सकती थी। संयोग से उसी साल हिन्दू कालेज खुल गया था। मैंने इस नये कालेज में पढ़ने का निश्चय किया। प्रिंसिपल थे—मि० रिचर्डसन। उनके मकान पर गया। वे पूरे हिन्दुस्तानी वेष में थे। कुरता श्रौर धोती पहने हुए फ़र्श पर बैठे कुछ लिख रहे थे। मगर मिज़ाज तबदील करना इतना श्रासान न था। मेरी प्रार्थना सुनकर–श्राधी ही कहने पाया था—बोले कि घर पर मैं कालेज की बात--चीत नहीं करता, कालेज में श्राश्रो। ख़ैर, मैं कालेज में गया। मुलाकात तो हुई, पर निराशाजनक! फ़ीस मुश्राफ़ न हो सकती थी। श्रब क्या करूं? श्रगर प्रतिष्ठित सिफारिशें ला सकता, तो मेरी प्रार्थना पर कुछ विचार होता; लेकिन देहाती युवक को शहर में जानता ही कौन था।

रोज़ घर से चलता कि कहीं से सिफारिश लाऊँ; पर १२ मील

की मंज़िल मार कर शाम को घर लौट आता। किससे कहूँ ! कोई अपना पुछत्तर न था।

कई दिनों बाद सिफारिश मिली। एक ठाकुर इन्द्रनारायण सिंह हिन्दू कालिज की प्रबन्ध-कारिणी सभा में थे। उन से जाकर रोया। उन्हें मुझ पर दया आ गई। सिफारिशी चिट्ठी दे दी। उस समय मेरे आनन्द की सीमा न थी। खुश होता हुआ घर आया। दूसरे दिन प्रिंसिपल से मिलने का इरादा था, लेकिन घर पहुँचते ही मुझे ज्वर आ गया। और दो सप्ताह से पहले न हिला। नीम काढ़ा पीते-पीते नाक में दम आ गया। एक दिन द्वार पर बैठा था कि मेरे पुरोहित जी आ गये। मेरी दशा देख कर समाचार पूछा। और तुरन्त खेतों में जाकर एक जड़ खोद लाये और उसे धोकर सात दाने काली मिर्च के साथ पिसवा कर मुझे पिला दिया। उसने जादू का असर किया। ज्वर चढ़ने में घण्टे ही भर की देर थी। इस औषधि ने, मानो, जाकर उसका गला ही दबा दिया। मैंने बार-बार पण्डित जी से उस जड़ी का नाम पूछा। पर उन्होंने न बताया। कहा—नाम बता देने से उसका असर जाता रहेगा।

एक महीने बाद मैं फिर मि० रिचर्डसन से मिला और सिफ़ारिशी चिट्ठी दिखाई। प्रिंसिपल ने मेरी तरफ तीव्र नेत्रों से देख कर पूछा—इतने दिन कहाँ थे ?

'बीमार हो गया था।'

"क्या बीमारी थी ?"

मैं इस प्रश्न के लिये तैयार न था। अगर ज्वर बताता हूँ तो शायद साहब मुझे झूठा समझें। ज्वर मेरी समझ

हलकी चीज़ थी। जिसके लिये इतनी लम्बी गैर हाजिरी अनावश्यक थी। कोई ऐसी बीमारी बताना चाहिए, जो अपनी कष्टसाध्यता के कारण दया भी उभारे। उस वक्त मुझे किसी बीमारी का नाम याद न आया। ठाकुर इन्द्रनारायण सिंह से जब मैं सिफ़ारिश के लिए मिला था, तब उन्होंने अपने दिल की धड़कन की बीमारी की चर्चा की थी। वह शब्द मुझे याद आ गया। कहा—पेलपिटेशन आफ हार्ट, सर।

साहब ने विस्मित होकर मेरी ओर देखा और कहा—अब तुम बिल्कुल अच्छे हो?

'जी हाँ'

'अच्छा, प्रवेशपत्र भर कर लाओ।'

मैंने समझा; बेड़ा पार हुआ। फ़ार्म लिया, खाने-पुरी की और पेश कर दिया। साहब उस समय कोई क्लास ले रहे थे। तीन बजे मुझे फ़ार्म वापिस मिला। उस पर लिखा था—'इसकी योग्यता की जांच की जाय।'

यह नई समस्या उपस्थित हुई। मेरा दिल बैठ गया। अङ्गरेज़ी के सिवा और किसी विषय में पास होने की मुझे आशा न थी, और बीजगणित और रेखागणित से मेरी रूह कांपती थी। जो कुछ याद था, वह भूल-भाल गया था, लेकिन दूसरा उपाय ही क्या था? भाग्य का भरोसा करके क्लास में गया और अपना फ़ार्म दिखाया। प्रोफेसर साहब बंगाली थे। अंग्रेज़ी पढ़ा रहे थे। वाशिंगटन इर्विंग का रिपवान विंकिल था। मैं पीछे की कतार में जाकर बैठ गया। और दो ही चार मिनट में मुझे ज्ञात हो गया कि प्रोफेसर साहब अपने विषय के ज्ञाता हैं। घण्टा समाप्त होने पर

उन्होंने आज के पाठ पर मुझ से कई प्रश्न किये और मेरे फ़ार्म पर 'सन्तोषजनक' लिख दिया।

दूसरा घण्टा बीजगणित का था। यह प्रोफेसर भी बंगाली थे। मैंने फ़ार्म दिखाया। नई संस्थाओं में प्रायः वही छात्र आते हैं, जिन्हें कहीं जगह नहीं मिलती। यहां भी यही हाल था। क्लासों में अयोग्य छात्र भरे हुये थे। पहले रेले में जो आया वह भरती हो गया था। भूख में सागपात सभी रुचिकर होता है। अब पेट भर गया था। छात्र चुन चुन कर लिए जाते थे। इस प्रोफेसर साहब ने गणित में मेरी परीक्षा ली और मैं फ़ेल हो गया। फार्म पर गणित के खाने में 'असन्तोषजनक' लिख दिया।

मैं इतना हताश हुआ कि फार्म लेकर फिर प्रिंसिपल के पास न गया। सीधा घर चला गया। गणित मेरे लिए गौरीशंकर की चोटी थी। कभी उस पर न चढ़ सका।

इन्टरमिडिएट में दो बार गणित में फ़ेल हुआ और निराश होकर इम्तहान देना छोड़ दिया। दस-बारह साल के बाद जब गणित की परीक्षा अख्तियारी हो गयी, तब मैंने दूसरे विषय लेकर आसानी से पास कर लिया। उस समय यूनिवर्सिटी के नियम ने, कितने युवकों की आकांक्षाओं का खून किया, कौन कह सकता है। ख़ैर, मैं निराश होकर घर तो लौट आया, लेकिन पढने 'की लालसा अभी तक बनी हुई थी। घर बैठ कर क्या करता ? किसी तरह गणित को सुधारूँ अं.र फिर कालिज में भर्ती हो जाऊँ, यहा धुन थी। इसलिए शहर में रहना जरूरी था। संयोग से एक वकील साहब के लड़कों को पढ़ाने का काम मिल गया। पांच रुपये वेतन ठहरा। मैंने दो रुपये में अपना गुज़र करके तीन रुपये घर पर देने का निश्चय किया। वकील साहब के अस्तबल के ऊपर एक छोटी सी कच्ची

कोठरी थी । उसी में रहने की मैंने आज्ञा ले ली । एक टाट का टुकड़ा बिछा दिया । बाज़ार से छोटा-सा एक लैम्प लाया और शहर में रहने लगा । घर से कुछ बर्तन भी लाया । एक वक्त खिचड़ी पका लेता और बर्तन धो मांज कर लाईबरेरी चला जाता । गणित तो बहाना था, उपन्यास आदि पढ़ा करता । पण्डित रत्न नाथ दर का 'फ़िसाना आज़ाद' उन्हीं दिनों पढ़ा । चन्द्रकांता-संतति पढ़ी । बंकिम बाबू के उर्दू अनुवाद जितने पुस्तकालय में मिले, सब पढ़ डाले । जिन वकील साहब के लड़कों को पढ़ाता था, उनके साले मेरे साथ मैट्रिक्यूलेशन में पढ़ते थे । उन्हीं की सिफ़ारिश से यह पद मिला था । उनसे दोस्ती थी, इसलिए जब जरूरत होती पैसे उधार ले लिया करता था । वेतन मिलने पर हिसाब हो जाता था । कभी दो रुपये हाथ आते, कभी तीन । जिस दिन वेतन दो तीन रुपये मिलते, मेरा संयम हाथ से निकल जाता । प्यासी तृष्णा हलवाई की दुकान की ओर खींच ले जाती । दो-तीन आने पैसे खा कर ही उठता । उसी दिन घर जाता और दो-ढाई रुपया दे आता । दूसरे दिन से फिर उधार लेना शुरू कर देता । लेकिन कभी-कभी उधार माँगते भी संकोच होता और दिन का निराहार व्रत रखना पड़ जाता ।

मेरी अब भी पढ़ने की इच्छा थी ; लेकिन दिन-दिन निराश होता जाता था ! जी चाहता था कहीं नौकरी करलूँ पर नौकरी कैसे मिलती है, यह न जानता था ।

जाड़ों के दिन थे । पास एक कौड़ी न थी । दो दिन एक-एक पैसे के चबेना खाकर काटे थे ।

मेरे महाजन ने उधार देने से इन्कार कर दिया था, या संकोच-वश मैं उससे माँग न सका था । चिराग़ जल चुके थे । मैं एक बुक्सेलर की दुकान पर एक किताब बेचने गया । चक्रवर्ती गणित

की कुँजी थी। दो साल हुए खरीदी थी। अब तक उसे बड़े यत्न से रक्खे हुए था, पर आज चारों ओर से निराश होकर मैंने उसे बेचने का निश्चय किया। किताब दो रुपये की थी; लेकिन एक पर सौदा ठीक हुआ। मैं रुपया लेकर दुकान से उतरा ही था कि एक बड़ी-बड़ी मूछों वाले सौम्य पुरुष ने, जो उस दुकान पर बैठे हुए थे, मुझ से पूछा—तुम यहाँ कहाँ पढ़ते हो?

मैंने कहा—पढ़ता तो कहीं नहीं हूँ, पर आशा करता हूँ कि कहीं नाम लिखा लूँगा।

'मैट्रिक्युलेशन पास हो?'

'जी हाँ।'

'नौकरी करने की इच्छा तो नहीं है?'

'नौकरी कहीं मिलती ही नहीं।'

वे सज्जन एक छोटे-से स्कूल के हैड मास्टर थे। उन्हें एक सहकारी अध्यापक की जरूरत थी। अठारह रुपये वेतन था। मैंने स्वीकार कर लिया। अठारह रुपये उस समय मेरी निराश-व्यथित कल्पना की ऊँची-से-ऊँची उड़ान से भी ऊपर थे। मैं दूसरे दिन हैड मास्टर साहब से मिलने का वायदा करके चला, तो पाँव जमीन पर न पड़ते थे।

(स्वा०) मुन्शी प्रेमचन्द

('हंस' के रेखाचित्रांक से)

शाबाश मोटेराम

[निर्मला की सगाई बाबू भालचन्द्र सिंह के सुपुत्र से हो चुकी है। पर दुर्भाग्य से निर्मला का बाप वकील उदयभानु मर जाता है और उसकी विधवा माँ, कल्याणी, पुरोहित मोटेराम को भालचन्द्र के घर भेजती है। आगे जो कुछ होता है, यहाँ पर दिया जाता है—]

संध्या का समय था। बाबू भालचन्द्र दीवानख़ाने के सामने आराम-कुर्सी पर नंग-धड़ंग लेटे हुक्का पी रहे थे। आप आबकारी के विभाग में एक ऊँचे ओहदे पर थे। ५००, वेतन मिलता था, ठेकेदारों से खूब रिश्वत लेते थे। ठेकेदार शराब के बजाय पानी बेचें, आपको केवल खुश रखना काफ़ी था। सारा कानून आपकी खुशी थी।......

बाबू साहब ने पण्डित जी को देखते ही कुर्सी से उठकर कहा—आप हैं? आइए, आइए। धन्य भाग! अरे, कोई है? कहाँ चले गये सब के सब; झगड़ू, गुरदीन, छकौड़ी, रामगुलाम कोई है? कोई नहीं बोलता; सब मर गये? दर्जन भर आदमी हैं, पर मौक़े पर एक की भी सूरत नजर नहीं आती। आप के वास्ते कुर्सी लाओ।

तीन-चार मिनट के बाद एक काना आदमी खाँसता हुआ आकर बोला—सरकार, इतना नौकरी हमार कीन न होई। कहाँ तलक उधार-बाढ़ी ले ले खाई? माँगत-माँगत थेथर होय गयन।

भाल०—मत बको, जाकर कुर्सी लाओ। जब कोई काम करने को कहा गया तो रोने लगता है। कहिये पंडित जी, वहाँ सब कुशल तो है ?

मोटेराम—क्या कुशल कहूँ बाबू जी, अब कुशल कहाँ ? सारा घर मिट्टी में मिल गया।

इतने में कहार ने एक टूटा हुआ चीड़ का सन्दूक लाकर रख दिया और कहा—कुर्सी मेज़ हमार उठाये नहीं उठता है।

पण्डित जी शरमाते हुए डरते-डरते उस पर बैठे कि कहीं टूट न जाय और कल्याणी का पत्र बाबू साहब के हाथ रख दिया।

भाल०—बाबू उदयभानु लाल से मेरी पुरानी दोस्ती थी। आदमी नहीं हीरा था। क्या दिल था, क्या हिम्मत थी। (आँखें पोंछकर) मेरा तो वैसे दाहिना हाथ ही कट गया।...... भाई के मरने का रंज भी इससे कम ही होता। आदमी नहीं, हीरा था। आप समधिन साहिबा से कह दीजियेगा, मुझे दिली रंज है।

मोटे०—आप से ऐसी ही आशा थी। आप जैसे सज्जनों के दर्शन दुर्लभ हैं। नहीं तो आज कौन बिना दहेज के पुत्र का विवाह करता है ?

भाल०—महाराज, दहेज़ की बातचीत तो ऐसे सत्यवादी पुरुषों से नहीं की जाती। उनसे तो सम्बन्ध हो जाना ही लाख रुपये के बराबर है। मैं इसी को अपना अहोभाग्य समझता हूँ। मेरा बस चले तो दहेज़ लेने वालों और दहेज़ देने वालों—दोनों ही को गोली मार दूँ! हाँ साहब, साफ गोली मार दूँ; फिर चाहे फाँसी ही क्यों न हो जाए! पूछो, आप लड़के का विवाह करते हैं कि उसे बेचते हैं ?

मोटे०—धन्य हो सरकार, भगवान ने आपको बड़ी बुद्धि दी है। यह धर्म का प्रताप है। मालकिन की इच्छा है कि विवाह मुहूर्त वही रहे; और तो उन्होंने सारी बातें पत्र में लिख ही दी हैं। बस, ऐसी बात कीजिए कि वकील साहब के नाम पर बट्टा न लगे। वैसे तो बारात में जितने सज्जन जायेंगे उनकी सेवा-सत्कार 'हम करेंगे ही, लेकिन परिस्थिति अब बहुत बदल गई है—सरकार, कोई करने-धरने वाला नहीं है। अब आप ही उबार लें तो हम उबर सकते हैं।

भालचन्द्र एक मिनट तक आँखें बन्द किये हुए बैठे रहे, फिर एक लम्बी साँस खींच कर बोले—ईश्वर को मंजूर ही न था कि वह लक्ष्मी मेरे घर आती, नहीं तो क्या वह वज्र गिरता? सारे मनसूबे खाक में मिल गये। मरने वाले की याद ही रुलाने के लिए काफ़ी है। उसे देख कर तो ज़ख्म और भी हरा हो जाएगा। अभी तो खैर इतना ही है कि उनकी सूरत आँखों के सामने नाचती रहती है, लेकिन वह कन्या घर में आ गई, तब मेरा जिन्दा रहना कठिन हो जायेगा। सच मानिये, रोते-रोते मेरी आँखें फूट जाएंगी।

मोटे०—ऐसा न कहिए सरकार। अब वह वकील साहब की कन्या नहीं, आपकी कन्या है। आपके हृदय के भाव तो कोई जानता नहीं, लोग समझेंगे, वकील साहब के देहान्त के कारण आप अपने वचन से फिर गये। इसमें आपकी बदनामी है। चित्त को समझाइये और हँसी-खुशी कन्या का पाणिग्रहण करा लीजिये। लाख विपत्ति पड़ी है; लेकिन मालकिन आप लोगों की सेवा-सत्कार में कोई कसर न उठा रखेंगी।

बाबू साहब समझ गये कि पण्डित मोटेराम कोरे पोथी के पण्डित नहीं, व्यवहार-नीति में भी चतुर हैं। बाले—पण्डित जी हलफ़ से

कहता हूँ।... ..वह मृत्यु एक प्रकार की अमंगल सूचना है, किसी आने वाली मुसीबत की आकाशवाणी है। सोचिये, जिस काम का आरम्भ ही अमंगल से हो, उसका अन्त मंगलमय हो सकता है ? नहीं, जान बूझ कर मक्खी नहीं निगली जाती। समधिन साहिबा को समझा कर कह दीजियेगा, मैं उनकी आज्ञा पालने को तैयार हूँ, लेकिन इसका परिणाम अच्छा न होगा। स्वार्थ के वश होकर मैं अपने परम मित्र की संतान के साथ वह अन्याय नहीं कर सकता।

इस तर्क ने पण्डित जी को निरुत्तर कर दिया। वह अभी कोई जवाब सोच ही रहे थे कि बाबू साहब ने फिर नौकरों को पुकारना शुरू किया—झगडू, छकौड़ी, भवानी, रामगुलाम एक भी नहीं बोलता। सब के सब मर गये। पण्डित जी के वास्ते पानी-वानी की भी फिक्र है ? इनको अक़्ल छू तक नहीं गई। देख रहे हैं; कि एक महाशय दूर से थके-माँदे चले आ रहे हैं; पर किसी को ज़रा भी परवाह नहीं। लाओ पानी-वानी रखो। पण्डित जी, आपके लिए शर्बत बनवाऊँ या फलाहारी मिठाई मंगवा दूं।

पण्डित जी का सिद्धान्त था कि घृत से सभी वस्तुएँ पवित्र हो जाती हैं। रसगुल्ले और बेसन के लडडू उन्हें बहुत प्रिय थे, पर शर्बत में उन्हें रुचि न थी। पीने से पेट भरना उसके नियम के विरुद्ध था। सकुचाते हुए बोले—शर्बत पीने की तो मुझे आदत नहीं, मिठाई खा लूँगा।

भाल०—फलाहारी न ?

मोटे—इसका मुझे कोई विचार नहीं।

भाल०—है ता यही बात। छूत-छात सब ढकोंसला है। मैं स्वयं

नहीं मानता। अरे अभी तक कोई नहीं आया, छकौड़ी, भवानी गुरदीन, रामगुलाम……कोई तो बोले।

अब की भी वही बूढ़ा कहार खाँसता हुआ आकर खड़ा हो गया और बोला—सरकार मोर तलब दे दीन जाए। ऐसी नौकरी मोसे न होई। कहाँ लौं दौरी, दौरत-दौरत गोड़ पिराय लागत हैं।

भाल०—काम कुछ करो या न करो, पर तलब पहले चाहिए। दिनभर बैठे-बैठे खाँसा करो, तलब तो तुम्हारी चढ़ ही रही है। जाकर बाज़ार से एक आने की ताज़ा मिठाई ला। दौड़ता हुआ जा।

कहार को हुक्म देकर बाबू साहब घर में गये और अपनी पत्नी रंगीली बाई को सारा वृत्तान्त सुनाने लगे।

रंगीली बाई बोली—जब दूसरी जगह दस हज़ार मिल रहे हैं, तो वहाँ क्यों न करूँ? उनकी लड़की कोई सोने की थोड़ी ही है।

भाल०—एक दफा ज़बान देकर मुकर जाना अच्छी बात नहीं। मगर तुम्हारी ज़िद से मजबूर हूँ।

परन्तु खत की पहली ही पंक्ति पढ़कर रंगीली बाई की आँखें सजल हो गईं और खत समाप्त हुआ तो उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। कल्याणी के करुण शब्दों ने उसके स्वार्थ-भरे हृदय को पिघला दिया। रुन्धे हुए कंठ से बोली—अभी जाकर ब्राह्मण से कह दो-हम विवाह करेंगे, ज़रूर करेंगे। बेचारी बड़ी मुसीबत में है।

भाल०—तुम कभी-कभी बच्चों की-सी बातें करने लगती हो। अभी कह कर आया हूँ कि मुझे विवाह करना मंज़ूर नहीं।……

रंगीली०—अच्छा, तुम अपने मुँह से न कहो, उस ब्राह्मण को मेरे पास भेज दो। मैं इस तरह समझा दूंगी कि तुम्हारी बात भी रह जाय और मेरी भी।

भाल०—आखिर तुम्हें कुछ तो मेरे मान-अपमान का विचार

करना चाहिए। यह तो मेरी छाती पर मूँग दलना है !

रंगीजी०—भलाई करके बुराई करने में लज्जा और संकोच है; बुराई करके भलाई करने में कोई संकोच नही।

भाल०—नहीं, शादी वहाँ नहीं होगी।

रंगीली०—मेरी बला से जहाँ चाहो करो। क्यों, भुवन से एक बार क्यों नहीं पूछ लेते ?

भला०—अच्छी बात है। उसी पर फैसला रहा।

रंगीली०—ज़रा भी इशारा न करना।

भला०—अजी मैं उसकी तरफ देखूँगा भी नहीं।

संयोग से उसी वक्त भुवनमोहन भी आ पहुँचा। रंगोली के पूछने पर उसने उत्तर दिया—कहीं ऐसी शादी करवाइये कि खूब रुपए मिलें। वकील साहब रहे ही नहीं, बुढ़िया के पास अब क्या होगा ? किसी धनी की लड़की से शादी हो जातो तो चैन से कटती। मैं ज्यादा नहीं चाहता, बस एक लाख नक़द हो।

रंगीली०—चाहे औरत कैसी ही मिले ?

भुवन०—धन सारे ऐबों को छिपा देगा। मुझे तो वह गालियाँ भी सुनाए तो चूँ न करूँ। दुधारू गाय की लात किसे बुरी मालूम होती है ?

रंगीली०—तुम बाप-पूत दोनों एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हो। दोनों उस ग़रीब लड़की के गले पर छुरी फेरना चाहते हो।

यह कहकर रंगीली बाई वहाँ से उठकर रसोई का प्रबन्ध करने चली गई। बाबू साहब मूछों पर ताव देते हुए बाहर आये कि मोटेराम को अन्तिम निश्चय सुना दें, पर उनका कहीं पता न था।

मोटेराम जी कुछ देर तक तो कहार की राह देखते रहे, जब उसके आने में बहुत देर हुई तो उनसे न बैठा गया। सोचा, भाग्य के भरोसे आड़ी दिये बैठे रहे, तो भूखे मर जायेंगे। चुपके से

लकड़ी उठाई और जिधर वह कहार गया था, उसी तरफ़ चले। बाज़ार पहुँचकर देखा कि बूढ़ा एक हलवाई की दुकार पर बैठा चिलम पी रहा था।

मोटेराम ने कहा—तुम्हारे बाबू साहब मुझसे कहने लगे कि खिचड़ी बनाइयेगा? मैंने कह दिया—सरकार, बूढ़ा आदमी है, रात को उसे मेरा भोजन बनाने में कष्ट होगा। मैं कुछ बाज़ार ही में खा लूँगा। बोले, अच्छी बात है, कहार आपको दुकान पर मिलेगा। बोलो साहजी, कुछ तर माल तैयार है? तोल दो सेर भर लड्डू।

यह कह कर मोटेराम हलवाई की दुकान पर जा बैठे और तर माल चखने लगे। ढाई-तीन सेर चट कर गये। खाते जाते थे और हलवाई की तारीफ़ करते जाते थे। बनारस वाले ऐसे रसगुल्ले नहीं बना पाते। कलाकन्द अच्छी बनाते हैं, पर तुम्हारी उनसे बुरी नहीं।

हलवाई—कुछ और लीजिये महाराज। थोड़ी-सी रबड़ी मेरी तरफ़ से लीजिये।

मोटे०—इच्छा तो नहीं है, लेकिन दे दो पाव-भर।

हलवाई—पाव-भर क्या लीजियेगा? चीज़ अच्छी है, आध-एक सेर लीजिये।

खूब इच्छापूर्ण भोजन करके पण्डित जी ने थोड़ी देर तक बाज़ार की सैर की और नौ बजते-बजते मकान पर आये। यहाँ सन्नाटा-सा छाया हुआ था। एक लालटेन जल रही थी। अपने चबूतरे पर बिस्तर जमाया और सो गये।

सवेरे आठ बजे उठे तो बाबू साहब टहल रहे थे। इन्हें जगा देखकर बोले—महाराज, आप रात कहाँ चले गये? बड़ी रात

तक आपकी राह देखता रहा। भोजन का सब सामान बड़ी देर तक रखा रहा। आप न आये, तो रखवा दिया गया। आपने कुछ भोजन किया था या नहीं ?

मोटेराम—हलवाई की दुकान से कुछ खा आया था।

भाल०—अजी आप मेरे मेहमान हैं, जितने पैसे लगे हों, ले लीजियेगा।

मोटे०—आप ही के हलवाई की दुकान पर खा आया था, वह जो नुक्कड़ पर बैठा है।

भाल०—कितने पैसे देने पड़े ?

मोटे०—आपके हिसाब में लिखा दिये।

भाल०—जितनी मिठाइयाँ ली हों, मुझे बता दीजिये, नहीं तो पीछे से बेईमानी करने लगेगा ; एक ही ठग है।

मोटे०—कोई ढाई सेर मिठाई थी और आध-सेर रबड़ी !

बाबू साहब ने विस्फारित नेत्रों से पंडित जी को देखा, मानो कोई अचम्भे की बात सुनी हो। तीन सेर ! कुछ ठिकाना है ! दौड़े हुए अन्दर गये और रंगीली से बोले—सुनती हो, यह महाशय कल तीन सेर मिठाई उड़ा गए।

रंगीलीबाई ने विस्मित होकर कहा—अजी नहीं, तीन सेर भला क्या खा जायेगा। आदमी है या बैल ?

उधर से पंडित जी विदा होने को तैयार बैठे थे ; बोले—नौ बजे की गाड़ी मिलेगी न ?

भाल०—भला आज तो और रहिये। यह कहते-कहते बाबू जी को भय हुआ कि कहीं यह महाराज और सचमुच न रह जाएँ, इसलिए

वाक्य को यों पूरा किया—हाँ, वहाँ लोग आपका इन्तज़ार कर रहे होंगे।

मोटे०—विचार भी यही था कि एक-दो दिन और ठहरूँ और त्रिवेणी का स्नान करूँ। लेकिन आप लोगों में ब्राह्मणों के प्रति लेशमात्र भी श्रद्धा नहीं। हम भिक्षुक ब्राह्मण नहीं, जो आपके द्वार पर पड़े रहें। यह न जानते थे कि यहाँ मेरे भोजन के भी लाले पड़ेंगे।

बाबू साहब बदनामी के डर से रंगीली के पास दौड़े गये, उससे गिड़गिड़ा कर १० रुपये ले आये और पंडित जी के चरणों में रख दिये। पंडित जी ने दिल में कहा—धत्तेरे मक्खीचूस की! ऐसा रगड़ा कि याद ही करोगे। रुपये जेब में रख लिए और आशीर्वाद देकर अपनी राह ली।

बाबू साहब बड़ी देर तक खड़े सोच रहे थे—मालूम नहीं मुझे अब भी कृपण ही समझ रहा है या पर्दा ढक गया। कहीं ये रुपये भी तो पानी में नहीं गिर पड़े!

—(स्व०) मुन्शी प्रेमचन्द
('निर्मला' से)

चैननगर के चार बेकार

कुछ समय पूर्व उत्तरी भारतवर्ष में दो पहाड़ियों के बीच में एक हरा-भरा गाँव आबाद था, जिसका नाम चैननगर था। यहाँ के लोग सीधे-सादे और मेहनती थे। अपना-अपना काम अपने-अपने हाथ से करते थे और किसी से कोई शिकायत न थी।

चैननगर के लोग दिनभर काम करते थे ; इसलिए वहाँ बीमारियाँ न थीं, दवाइयाँ न थीं, वैद्य न थे। वहाँ के लोग अमनो-अमान और प्यार-मुहब्बत से रहते थे। इसलिए वहाँ कचहरियाँ न थीं, वकील न थे, जेलखाने न थे। वहाँ के लोग सरल स्वभाव के थे ; इसलिये वहाँ चोरियाँ न थीं, न वहाँ पुलिस थी, न बन्दूकें, न तलवारें, न तोपें थीं। वहाँ के लोग जितेन्द्रिय थे ; इसलिये वहाँ रूप-यौवन की दुकानें न थीं, न शराब थी, न क़त्ल खून की घटनाएँ होती थीं। वहाँ के लोग अतिथि-सत्कार को धर्म समझते थे, इसलिए वहाँ न धर्मशालाएँ थीं, न सराएँ थीं, न होटल थे। वहाँ मेहनत-मजदूरी के मोटे क़ानून के सिवा दूसरा कोई क़ानून न था। वह क़ानून यह था कि जो काम करे खाय, जो बेकार रहे भूखों मरे। सब काम करते थे, सिर्फ़ चार आदमी ऐसे थे, जिनको बेकारी पसन्द थी। वे भूखों मरते थे और दूसरों के दान पर जीते थे। आखिर एक दिन उन्हें भी लोगों ने गाँव से निकाल दिया। अब वहाँ सब काम करने वाले थे। बेकार कोई भी न था।

मगर शैतान को असभ्य मूर्खों की यह छोटी-सी दुनिया

पसन्द न आई, और उसने निश्चय कर लिया कि मैं इसे सभ्य बनाऊँगा और वहाँ के रहने वालों के लिए उन्नति और इक़बाल के दरवाज़े खोल दूँगा ।

दूसरे दिन शैतान के इशारे से एक खूबसूरत और अमीर सौदागार चैननगर में आया और सारा गाँव देखने के बाद बोला—अफ़सोस, तुम लोग बिल्कुल गँवार और असभ्य हो। पता नहीं, इस हाल में तुम जीते कैसे हो ?

लोगों ने यह बात सुनी तो आश्चर्य से सौदागर का मुँह देखने लगे।

सौदागर ने कहा—मैंने सारे संसार की सैर की है, और मैंने बड़ी-बड़ी अजीब चीज़ें देखीं हैं। मगर ऐसा ग़रीब और दीन-हीन गाँव मैंने और कहीं नहीं देखा।

लोगों ने यह सुना और कहा—हमें तो यह मालूम न था। क्या हम अब सभ्यता नहीं सीख सकते ?

सौदागार ने उत्तर दिया—मुझे चार आदमी दे दो, और मैं इक़रार करता हूँ कि तुम्हारे गाँव का एक-एक आदमी सभ्य बन जायेगा। मगर शर्त यह है कि वे चारों बेकार हों।

चैननगर में एक भी बेकार न था। लोग निराश हो गये और बोले—अफ़सोस ! हमें क्या खबर थी कि कभी हमको बेकारों की भी ज़रूरत पड़ जायेगी। यह खबर होती तो हम उन चार बेकारों को गाँव से कभी न निकालते।

मगर सौदागर हताश न हुआ, और उसने उन्हीं लोगों में से चार आदमी चुन लिये। उसने उन्हें खाने को अच्छे-अच्छे भोजन दिये, पहनने को कीमती और महीन वस्त्र दिये और उनसे कहा—जाओ, गाँव की सैर करो। तुम्हारा यही काम है।

और वे चारों गाँव में घूमने लगे। मगर कुछ ही दिनों में उनका जी उदास हो गया, और उन्होंने सौदागर से कहा—हमें कुछ काम दीजिये। हम बेकार नहीं रह सकते।

सौदागर ने मुस्करा कर उनकी तरफ देखा, और धीरे से कहा—तुम बड़े आदमी हो। बड़े आदमी काम नहीं किया करते। काम करना मज़दूरों और कुलियों का काम है।

चारों बेकार यह सुनकर कि अब वे बड़े आदमी बन गये हैं, खुशी से फूले न समाये और बोले—तुम कितने दयालु हो? तुमने हमें बड़ा बना दिया है। अब सचमुच हमें काम करने की क्या जरूरत है? हमारा काम दूसरे लोग किया करेंगे। मगर हमारे पास उनको देने के लिए तो पैसा भी नहीं है, न हम खेती करते हैं। न हमारे पास अनाज है।

सौदागर एक बार फिर मन को मोह लेने वाले ढंग से मुस्कराया और बोला—तुम बड़े आदमी हो बड़े आदमी अपना काम बिना कुछ दिये ही करा लिया करते हैं। मगर मैं तुम्हारे लिये खर्च करने को भी तैयार हूँ। उसके बाद उसने कहा—इस गाँव के लोगों को बुला कर उनसे कहो कि वे तुम्हारे लिए पाँच महल बना दें। जो खर्च होगा, मैं दूँगा।

दूसरे दिन कई लोगों ने खेती-बाड़ी का काम बन्द कर दिया, और महल बनाने लगे।

महल बन गए। यह महल बड़े विशाल और सुन्दर थे। इन्हें देख कर दिल की कली खिल जाती थी। मगर गाँव की फसल मारी गई। सौदागर ने लोगों को रुपया दिया, मगर रुपये से किसी का पेट न भरता था। लोग ज़ार-ज़ार रोते थे और कहते थे, हाय! अब क्या होगा?

सौदागर ने एक बेकार को बुलाकर कहा—कुछ आदमियों को नौकर रख लो। उन्हें बाहर भेजकर सस्ते दामों अनाज खरीदो और यहाँ मंगवा कर महंगे दामों बेचो। जो बचे वह तुम्हारा हिस्सा है।

उस बेकार ने ऐसा ही किया। वह पहला अवसर था जब चैन-नगर के निवासियों ने बाहर से आया हुआ अनाज खाया। उन्होंने कहा—यह आदमी कितना नेक है? अगर यह न होता तो हम और हमारे बाल-बच्चे भूखे मर जाते।

अब उनको बाहर की चीज़ें अच्छी मालूम होने लगीं, अनाज मंगवाने वाले उस बेकार ने कई और चीज़ें मंगाना शुरू कीं। कुछ ही महीनों में वह अमीर हो गया और उसने कई दुकानें खोलकर उन पर अपने कारिन्दे बैठा दिये। मगर वह अपने हाथ से कोई काम न करता था, उसका सारा काम दूसरे लोग करते थे।

दूसरे साल जब फ़सल खड़ी थी, तो एक रात को कुछ हरिण आए और फ़सल का कुछ भाग खराब कर गये। सौदागर ने गाँव के लोगों को गाँव के चौक में जमा किया, और कहा—इस तरह तो यह जानवर तुम्हारी सारी फसल खराब कर जायेंगे। अगर तुम कहो तो मेरा आदमी ऐसा प्रबन्ध कर सकता है कि फिर कभी यह हरिण तुम्हारे खेतों के पास तक न फटक सकेंगे।

चैननगर के लोगों ने कहा—देखो, यह आदमी कैसा दानी है? अगर यह न होता, तो हमारे सारे खेतों, को हरिण ही खा जाते।

अगले दिन दूसरे बेकार ने गाँव के कुछ लोगों को लाठियाँ देकर खेती की रखवाली के लिए खड़ा कर दिया। जब फसल कटी तो उसने अपने नौकरों से कहा—आधा अनाज मेरे पास उठा लाओ,

आधा उन के पास रहने दो। नौकरों ने ऐसा ही किया। बेकार ने तीन हिस्से आप रख लिये, एक हिस्सा नौकरों को बाँट दिया।

यह पहला अवसर था जब चैननगर के लोगों ने दूसरों के द्वारा रक्षा की सुविधा का अनुभव किया। और यह सोचने की जरा भी परवाह न की कि हिरण कितना खाते और हमने कितना दिया? मगर लोगों को जो अनाज मिला, उनकी जरूरत से कम था। चैननगर में चोरियाँ होने लगी। खेतों के रक्षक ने कहा—अगर तुम चाहो तो मैं तुम्हारे मकानों के द्वार पर अपने पहरेदार खड़े कर सकता हूँ। फिर क्या मजाल जो तुम्हारा एक सेर अनाज भी चोरी चला जाए?

गाँव वालों ने कहा—बड़ी खुशी से?

मकानों और दुकानों पर पहरेदार खड़े हो गए। चोरी बन्द हो गई, मगर चोरी को रोकने के लिए जो खर्च हुआ वह चोरी की रकम से कहीं ज़्यादा था।

इस तरह दूसरे बेकार का कारबार भी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करने लगा। थोड़े ही दिनों में उसने भी कई महल खड़े कर लिये। मगर वह अपना काम आप न करता था। उसका सारा काम दूसरे लोग करते थे।

कभी वह दिन था जब चैननगर में सब लोग ग़रीब थे, मगर खाने-पीने की किसी को कमी न थी। अब कारबार चलता था, मगर लोग भूखों मर रहे थे। परिणाम यह हुआ कि लड़ाई-झगड़े शुरू हो गये। वह प्यार, वह मुहब्बत, वह सादगी, वह पवित्रता न जाने कहाँ चली गई। अब लोगों को एक दूसरे का ज़रा भी ख़याल न था। बात-बात में छुरियाँ चलने लगीं। चैननगर में बेचैनी फैल गई। सौदागर ने यह दशा देखी, तो लोगों से कहा—

अगर तुमने इन बातों का इलाज न किया तो मुझे डर है कि तुम्हारी प्राचीन और सुन्दर नगरी नष्ट हो जाएगी ! क्या तुम ऐसा प्रबन्ध नहीं कर सकते कि ऐसी दुर्घटनाएँ सदा के लिए बन्द हो जाएँ ।

लोगों ने सौदागर की तरफ देखकर सिर झुका लिया; और धीरे से कहा—कुछ आप ही करें । हम से तो कुछ न होगा ।

सौदागर ने जवाब दिया—अच्छा, हम सोचेंगे ।

उसी दिन एक किसान और एक महाजन में झगड़ा हो गया । महाजन का कहना था कि इसके जिम्मे मेरा २० सेर अनाज है । किसान कहता था यह झूठा है, मुझे केवल इसका १० सेर अनाज देना है । दोनों लड़ते थे, झगड़ते थे और एक-दूसरे को गालियाँ देते थे । एक दुकानदार ने इसकी खबर जाकर सौदागर को दे दी । सौदागर ने उसी समय एक आदमी भेजकर दोनों को अपने पास बुलाया और तीसरे बेकार से कहा—इनके झगड़े का फ़ैसला कर दो ।

बेकार ने दोनों की बातचीत सुनी और फिर किसान से कहा—तूने महाजन से २० सेर अनाज भी लिया है, और उसे गालियाँ भी दी हैं; इसलिए मेरा फ़ैसला है कि तू इसे २५ सेर अनाज दे ।

महाजन ने खुश होकर कहा—कैसा अच्छा फ़ैसला है । २० सेर न देता था, अब २५ सेर देना पड़ा ।

किसान को २५ सेर देना ही पड़ा ।

अब उस बेकार ने महाजन की तरफ देखकर कहा—तेरे पास क्या प्रमाण है कि तूने इसको २० सेर अनाज दिया ? उसका बयान है कि उसने १० सेर अनाज लिया है ।

महाजन चुपचाप खड़ा ज़मीन की तरफ देखता रहा उसके पास कोई प्रमाण न था ।

बेकार ने कहा—तुझे केवल १० सेर अनाज मिल सकता है, मगर तूने उसे गालियाँ दी हैं और गाँव के लोग इनकी गवाही देने को तैयार हैं, गालियाँ देने का तुझे कोई अधिकार न था। क्या उसका तेरे पास कोई जवाब है ?

महाजन चुपचाप खड़ा भूमि की तरफ देखता रहा। उसके पास कोई जवाब न था ?

बेकार ने कहा—मेरा फ़ैसला यह है कि तेरे १० सेर अनाज में से ५ सेर जुर्माने का काट लिया जाये ५ सेर तुझे दे दिया जाए।

महाजन क्या कह सकता था ?

किसान ने खुश होकर कहा—अच्छा फैसला है १० सेर न लेता था। अब पाँच सेर ही लेना पड़ा।

लोगों ने यह सुना तो कहा—हम खुशनसीब हैं। अगर यह आदमी न होता तो हम लड़-लड़ कर मर जाते।

इस तरह तीसरे बेकार का काम भी चल पड़ा और थोड़े ही दिनों में उसके पास भी कई आलीशान महल हो गये। मगर वह भी कोई काम अपने हाथ से न करता था। उसके सारे काम दूसरे लोम किया करते थे।

मगर अभी चौथा बेकार ग़रीब था। सौदागर ने उसके लिए कमाई का कोई साधन, सोचने की बहुत कोशिश की। सोच-सोच कर उसके सिर में दर्द होने लगा, उसकी कनपटियाँ फटने लगीं; मगर उसे कोई रास्ता दिखाई न दिया। हार कर वह शैतान के पास गया, और उसे तीन साल की कहानी सुना कर बोला—गाँव की पौन आबादी पर अब हमारा अधिकार हो चुका, मगर अभी एक बेकार बाकी है। अगर उसके लिए कोई

अच्छा-सा काम निकल आए तो चैननगर का एक-एक आदमी हमारी मुट्ठी में आ जाए।

शैतान ने अपने नायब की पीठ पर धीरे से थपकी दी और अपनी उल्लू की-सी गोल-गोल और छोटी-छोटी आँखों से उसकी तरफ देखकर कहा—जाओ वहाँ एक लोहे की चक्की लगा दो। बाकी मैं आप समझ लूँगा।

सात दिन के अन्दर-अन्दर चैननगर के बाहर खुली जगह में लोहे की चक्की लग गई। रात के समय शैतान ने आकर उसमें अपनी शैतान-शक्ति दाखिल कर दी। दूसरे दिन से हमने गेहूँ, बाजरा, मक्की और चने का आटा पीसना शुरू कर दिया और यह आटा इतना महीन था कि गाँव के गँवार लोग देखकर दंग रह गये। उन्होंने आज तक ऐसा आटा न खाया था। एक ही दिन में चैननगर की सैंकड़ों पत्थर की चक्कियाँ बेकार हो गई, और एक ही दिन में चैननगर की सैंकड़ों विधवा स्त्रियाँ और बिना बाप के बच्चे भूखों मरने लगे। मगर और लोग खुश थे, और अपने सौभाग्य पर फूले न समाते थे।

चौथा बेकार सामने एक तख्तपोश पर बैठा हुक्का पीता रहता था। वह साँझ के समय इतना कमाकर उठता था, जितना गाँव का कोई दूसरा आदमी न कमाता था। उसने सौदागर की राय से वहाँ और भी कई कलें लगा दीं, और गाँव के कई और गरीबों को भी दाने-दाने का मोहताज कर दिया। इस तरह शैतान की मेहरबानी से चौथा भी अमीर हो गया। मगर वह भी अपना कोई काम अपने हाथ से न करता था। उसका सारा काम गाँव के दूसरे लोग करते थे।

चैननगर आज भी उत्तरी भारत की उन दो पहाड़ियों के बीच में उसी तरह आबाद है। अब वहाँ देखने योग्य कई इमारतें बन गई हैं। वहाँ कचहरियाँ हैं, वहाँ सराएँ और धर्मशालाएँ हैं, वहाँ बड़े-बड़े कारखाने हैं, ऊँचे-ऊँचे महल हैं, और शहर के बीचों--बीच चौक में उस सौदागर का सत्तर फुट ऊँचा बुत खड़ा है। अगर कोई मुसाफिर उधर जा निकलता है तो गाँव की शान-शोभा देख कर उसकी तबीयत हरी हो जाती है, उसका हृदय--कमल खिल उठता है। मगर अब वहाँ का कानून बदल गया है। पहले सब काम करने वाले खाते थे, बेकार भूखों मरते थे। अब बेकार ऐश करते हैं, काम करने वाले भूखों मरते हैं।

--सुदर्शन

['नगीने' से']

कहाँ रहोगे, कहाँ जाओगे ?

(१)

यह असम्भव नहीं है कि किसी को तुम प्रति-दिन देखा करो और उसके विषय में कुछ भी न जान पाओ। यह अनुभव मुझे अभी एक सोलह-सत्रह वर्ष के लड़के श्री ओन्सेन के बारे में हुआ।

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की शाखा दिल्ली में खुल जाने के कारण मुझे इधर पहले से भी अधिक दिल्ली आना जाना पड़ता है। ठहरना सदा की भाँति बौद्ध विहार में ही होता है। वहाँ मैं एक लड़के को देखता रहा हूँ—नाम ऊपर दिया है, ओन्सेन।

इस बार मैं प्रातः, मध्याह्न, सायं जब कभी बाहर से विहार लौटा तो ओन्सेन को मन्दिर के इधर-उधर कहीं न कहीं कुछ पढ़ते पाया। ध्यान आकर्षित हुआ। देखा हिन्दी की कोई मासिक पत्रिका पढ़ रहा है।

"सब समझते हो ?" मैंने साधारण प्रश्न किया।

"जो-जो नहीं समझता हूँ, उस पर निशान लगा देता हूँ।"

"दिल्ली में इस बार तीन-चार दिन ठहरूँगा। जिन-जिन शब्दों का अर्थ नहीं आता, सब बता दूँगा।"

ओन्सेन प्रसन्न हुआ।

एक दिन ओन्सेन अर्थशास्त्र की कोई पुस्तक पढ़ रहा था। कठिन शब्द उसकी कापी में लिखे थे। वह उस पुस्तक को समझकर हिन्दी और अर्थशास्त्र का ज्ञान एक साथ प्राप्त करना

चाहता था। मैंने समझा-समझा कर एक दो पृष्ठ पढ़ाये। शाम को फिर पढ़ाने का आश्वासन दे काम से बाहर निकला। दोपहर का गया अगले दिन शाम को वापिस लौट सका। ओन्सेन को दिया वचन याद था। मुझे अच्छा नहीं लगा।

रात होने पर वह दो-एक समाचार-पत्र ले मेरे पास आया। बोला—"हिन्दुस्तान' में प्रकाशित पण्डित जवाहरलाल नेहरू के वैशाख पूर्णिमा के दिन प्रकट किये गये विचारों को बर्मी पत्रों को भेजना चाहता हूँ।" मैंने उसे वे अंश समझा कर पढ़ा दिये और उनका संक्षिप्त रूप सरल हिन्दी में लिखवा भी दिया जिससे वह आसानी से बर्मी में अनुवाद कर सके।

जिस भाषा को अभी अच्छी तरह समझ भी नहीं सकता उससे अपनी भाषा में अनुवाद करके अपने देश को समाचार भेजता है।

मैंने तय किया कि कल समय निकाल कर मैं इसे समझने का प्रयत्न करूँगा।

६ मई को प्रातःकाल मुझे दिल्ली छोड़ देनी थी। पाँच तरीख को संध्या को सब कामों से छुट्टी पाकर हम दोनों जैसे-तैसे कुछ समय निकाल सके।

मैंने पूछा—"ओन्सेन, क्या तुम बता सकते हो कि तुम्हारा जन्म कब हुआ ?"

"सन् १९३२ में। दिन बृहस्पतिवार था, महीना याद नहीं।"

"तुम्हारा जन्म स्थान ?"

उसने बर्मा का मान-चित्र दिखाकर बताया—"पिन्मना।"

घर की आर्थिक स्थिति जानने की दृष्टि से मैंने पूछा—"घर पर और तुम्हारे भाई-बहन, माता-पिता ?"

"हमारे घर में मेरी तीन बहिनें थीं, दो बड़ी, एक छोटी। पिता १५) माहवार पर रेलवे में फिटर थे। हम लोग माता जी के साथ पाँच जने रेलवे क्वार्टर में रहते थे और जगह-ज़मीन कुछ नहीं।"

पाँच जने और १५) मासिक की आमदनी !

"ओन्सेन ! तुम्हें अपने बचपन की छोटी से छोटी आयु की कोई बातें याद हैं ?"

"हम लोग छोटे थे तो एक भारतीय साधु के पीछे एक-एक पैसे के लिए एक-एक मील तक भागे चले जाते थे। वह कभी-कभी पैसे दे देता था, बहुधा भिड़कियाँ। और घर से दाल-चावल ले जाकर जंगल में कच्चा-पक्का पका कर खाना भी हमें अच्छा लगता था।"

"तो तुम स्कूल में कब गये ?"

"ठीक याद नहीं। शायद पाँच वर्ष की आयु में। एक प्राइमरी स्कूल था। पढ़ाने वाली एक औरत थी, दो-तीन महीने ही पढ़ा।"

"तब क्या करने लगे ?"

कुछ नही, कोई दो वर्ष गुड्डी उड़ाने और लट्टू घुमाने में ही गुज़ार दिये।"

"तब क्या कुछ पढ़े ही नहीं ?"

"उस समय पिन्मना से स्वा रेलवे-स्टेशन पर पिता का तबादला हो गया। माता-पिता दोनों स्वा चले गये। सारा परिवार गया। वहाँ मैं एक बौद्ध विहार (फुंजी-चाँव) में पढ़ने लगा।"

"वहाँ तुम्हारी दिन-भर क्या चर्चा रहती थी ?"

"चार बजे उठकर दूसरे लड़कों के साथ विहार के लिये भिक्षा लेने जाना। लौटकर बर्तनों को धो-माँज कर भन्ते लोगों को भोजन कराना। भन्ते लोगों के भोजन के समय कण्ठस्थ पाठ सुनाना

पड़ता था। जलपान के बाद नौ बजे तक पढ़ाई। फिर भिक्षा में भन्ते लोगों के साथ जाना। भोजनान्तर भन्ते लोग थोड़ा विश्राम करते थे। महास्थविर लेटे-लेटे पाठ सुनते थे। याद न होने पर कभी-कभी बहुत पीटते भी थे। बर्मा में पाठ याद न होने पर पीटने को बुरा नहीं समझा जाता। हाँ, मैंने अधिक बार मार नहीं खाई।"

"तो तुमने चाँव में रह कर क्या पढ़ाई की ?"

"मैं पाली ही पढ़ता रहा। चाँव में पाली ही पढ़ाई जाती है। मैंने पाली पाठावली के पाँच भाग समाप्त किये।"

"तो आगे पढ़ाई क्यों नहीं जारी रखी ?"

"मेरी ९ वर्ष की आयु रही होगी। उस समय मेरी माँ पिता जी से असन्तुष्ट होकर उनके छोटे भाई अर्थात् मेरे चाचा के पास चली गई, स्वा से तीन मील दूर तागमा। मेरे पिता ब्राह्मपुर (उड़ीसा) के पास के ब्राह्मण थे। उनकी शादी वहाँ (भारत में) हो गई थी। किन्तु मेरे चाचा की शादी शायद नहीं हुई थी। मेरे चाचा ने मुझे और मेरी माँ को कुछ समय रखा।"

"वहाँ तुम कुछ नहीं पढ़े ?"

"वहाँ मैं बर्मी बुद्धिस्ट प्राइमरी स्कूल में पढ़ा। पहली, दूसरी क्लास पास की। वहाँ फ़ीस नहीं लगती थी।"

"और पुस्तकें ?"

"पुस्तकें क्या ?—एक स्लेट, एक किताब।"

"तो आगे पढ़ाई क्यों नहीं जारी रही ?

"दस वर्ष की आयु हो गई होगी। फिर माता जी पिता जी के पास स्वा चली गईं। मझे भी जाना पड़ा। वहाँ फिर चाँव में पढ़ने गया।"

"कितने दिन पढ़े ?"

"कितने दिन ? शायद एक वर्ष । तब तक जापानी आक्रमण हो गया । हम सभी स्वा से पिम्ना भागे । पिम्ना से ताज़ी, ताज़ी से माण्डले, माण्डले से ज़ैगाइन, ज़ैगाइन से नब्बा । नब्बा से पैदल भागना पड़ा कलेवा, मचीना, नागाहिल सब पैदल किया । नागाहिल में पिता जी ऐसे बीमार हो गए कि हमको यह भी पता नहीं लगा कि वे जीवित हैं, अथवा मर गये हैं । माँ, तीनों बहनें और मैं उन्हें छोड़ कर चल दिये ।"

(२)

मैंने देखा कि वे अन्तिम वाक्य लड़के ने बड़ी ही वेदना से व्यक्त किये । किन्तु उसने कथा जारी रखी—"वहाँ से मणिपुर पहुँचे । मणिपुर में पन्द्रह दिन रहे । मणिपुर में पिता जी फिर आ मिले । मणिपुर से डीमापुर मोटर से । डीमापुर में आकर पिता जी का देहान्त हो गया ।"

"डीमापुर से आगे तुम कहाँ गये ?"

"डीमापुर से पता नहीं हमें रेल से कहाँ ले जाया गया । किन्तु जहाँ हम पहुँचे वहाँ महात्मा गाँधी का जहाज़ खाने-पीने के साथ आया । हम आसाम पहुँचे । आसाम से कलकत्ता ।"

"कलकत्ता में कहाँ रहे ?"

"कलकत्ते में हिन्दू कैम्प और मुस्लिम कैम्प बने हुए थे । हमें हिन्दू कैम्प में रखा गया । वहाँ खाना, कपड़ा, दवाई, सब कुछ मिला, फिर लोगों से पूछा गया—कहाँ रहोगे, कहाँ जाओगे ?"

"ब्रह्मपुर', हम लोगों ने उत्तर दिया ।

चारों प्राणियों ने सोचा कि ब्रह्मपुर में पिता जी का घर ढूँढ़ लेंगे । ब्रह्मपुर मिला, किन्तु ब्रह्मपुर में पिता जी का घर नहीं मिल

वहाँ छोटी बहन का शरीरान्त हो गया। घर से छः प्राणी भागे थे, चार रह गए। लड़के की कहानी गीली हो चली।

'ब्रह्मपुर से हम उड़ीसा के दूसरे स्थानों में घूमते रहे। रेलों में कोई न कोई बर्मी मिल जाते थे। मदद कर देते थे। इसी प्रकार घूमते-घूमते आसाम में पार्वतीपुर आ पहुँचे। वहाँ भी एक कैम्प में रहे।'

कैम्प के मैनेजर ने पूछा—"कहाँ रहोगे, कहाँ जाओगे?"

"कलकत्ता।"

कैम्प के मैनेजर ने कलकत्ते भेज दिया।

"कलकत्ते में हम दस-पन्द्रह दिन मद्रास कैम्प में रहे। एक दिन मैं सैर करने निकला। एक बूढ़े मुसलमान ने बर्मी बौद्ध विहार (फुँजी चाँव) का पता दिया। हम लाग वहाँ पहुंचे। दुःखी भी थे, सुखी भी।"

"बर्मी बौद्ध विहार में कितने दिन रहे?"

"अधिक नहीं। भिक्षुओं ने हमें बनारस कैम्प भेज दिया। वहाँ मैं प्राइमरी स्कूल में भर्ती हुआ। क, ख, ग पढ़ना आरम्भ किया।"

"वही प्राइमरी स्कूल जो बरामदे में लगता है?"

"हाँ, वही। किन्तु वहाँ केवल एक दर्जा पढ़ पाया। वहाँ से बनारस के आदर्श विद्यालय में भर्ती किया गया। आदर्श विद्यालय में दो दर्जे पढ़ा।"

"उस समय खाने-पीने की क्या व्यवस्था थी?"

"हम चारों जनों के लिए सरकार से ५०) प्रतिमास मिलते थे।"

"तब?"

"तब क्या? बनारस से हम लोग कुसीनगर गये। माता जी कैम्प में नहीं रहना चाहती थीं। वहाँ भदन्त कित्तिमा

जी के प्रयत्न से विड़ला जी के यहाँ से ४०) या ५०) मासिक मिलने लगे। मुझे कुसीनगर के प्राइमरी स्कूल में भर्ती कर दिया गया ?"

"तुम तो बनारस के आदर्श विद्यालय (मिडिल स्कूल) में पढ़ चुके थे ?"

"हाँ, वही पढ़ाई फिर प्राइमरी स्कूल में की। एक ही वर्ष में दो-तीन दर्जे पढ़ कर हाई स्कूल में भर्ती हो गया। हाई स्कूल में मुझे पांचवें दर्जे में प्रविष्ट किया गया।"

"हाई स्कूल में कब तक पढ़े ?"

"वहाँ भी कहाँ पढ़ना मिला! कुसीनगर से फिर सुरिया भन्ते के पास बनारस चले आये। बर्मी सरकार से दुबारा ५०) मासिक मिलने लगे। मैं बनारस के जनता-राष्ट्रीय-विद्यालय में भर्ती हुआ।"

"राष्ट्रीय-विद्यालय में क्या-क्या सीखा ?"

"अंग्रेजी, हिन्दी, चर्खा चलाना। तीन वर्ष में सातवाँ दर्जा पास किया।"

अब जापान की हार हो गई थी। बर्मी लोग वापस अपने देश लौट रहे थे। ओन्सेन अपनी दोनों बहनों तथा माता जी के साथ बर्मा लौट गया। बर्मा में दोनों बहनों की शादी हो गई। ओन्सेन और उसकी माता जी दो प्राणी रह गये।

अपनी बहनों की शादी के सिलसिले में ओन्सेन ने कहा—"बर्मा में शादी मामूली बात है। वहां शादी पर विशेष खर्चा नहीं होता। यहाँ भारत में तो शादी पर बहुत पैसा बर्बाद होता है।

सन १९४८ में ओन्सेन की माता जी ने दूसरी शादी कर ली। यह सज्जन जिनसे शादी हुई लोको शैड के कोई क्लर्क थे।

"तब बर्मा में तुमने फिर अपनी पढ़ाई शुरू की होगी ?"

"नहीं, बर्मा में मैं पढ़ नहीं सका। पढ़ना चाहता था, किन्तु माता-पिता की ग़रीबी के कारण काम करना पड़ता था। किसी न किसी व्यापारी का सहायक बनकर एक जगह से दूसरी जगह जाता। व्यापारियों के साथ घूमने में मन नहीं लगता था, किन्तु मजबूर था। जो पैसा कमाता, अधिकांश ख़र्च हो जाता। पैसे का अपव्यय भी होता। थोड़ा माता-पिता को दे देता।

अब बर्मा स्वतन्त्र हो गया था। एक ओर कम्युनिस्टों और दूसरी ओर करीन लोगों के समाचार आने आरम्भ हुए।

मैंने पूछा—"ये करीन लोग कौन होते हैं ?"

ओन्सेन ने बताया—"करीन पर्वत के ईसाई लोग हैं। वे देश का एक हिस्सा अपने लिए पृथक चाहते हैं।"

"तब आगे की कथा कहो।"

"सन १६४६ में ४ फ़रवरी को मैं थाजी गया। वहाँ ग्यारह दिन रहा। उत्तर से करीन लोग आ पहुँचे। उन्होंने थाजी को जीत लिया। हम लोग उनके कब्जे में थे। उन्होंने पूछा—तुम कौन हो ? हमने बताया कि हम रेल में काम करने वाले हैं। वे हमें रेलवे वर्कर समझ रेल में बिठा कर ले गये। पिता जी के साथ रहते—देखते मैं कुछ-कुछ फ़िटर का काम सीख गया था। मुझ से बीस दिन तक करीनों ने फिटर का काम लिया।"

"तब"

"तब मुझे 'माता' निकल आई। अंग्रेजी मिलिटरी हॉस्पिटल पर करीनों का कब्ज़ा था। उन्होंने मुझे वहाँ भेज दिया। एक सप्ताह में अच्छा हुआ। जिस दिन अच्छा हुआ उसी

दिन करीन लोग हार गये। उस समय ऑल बर्मा इन्डियन काँग्रेस के लोगों ने मुझ से आकर पूछा—"कहाँ रहोगे? कहाँ जाओगे?" लोग शान स्टेट की ओर जा रहे थे। मैं भी उनके साथ चला गया। शान स्टेट में टानजी शहर में रहा। वहाँ से एक मुसलमान व्यापारी के साथ लोइलिन चला गया। लोइलिन में चार महीने रहा। वहाँ मुझे कांग्रेस के कर्नल देव का भाषण सुनने को मिला। उसे सुनकर काँग्रेस पार्टी के नाम एक चिट्ठी लेकर टानजी गया। १० अगस्त को हैवो एरोड्रोम।"

ओन्सेन ने अपनी छोटी-सी डायरी निकालकर उसमें से समय और स्थान की प्रामाणिक सूचना देनी आरम्भ की—

"ढाई बजे रंगून के लिए प्रस्थान। साढ़े छः बजे मैग-लाडोम एरोड्रोम। साढ़े सात बजे रंगून।"

"तुम फिर बर्मा से भारत की ओर क्यों चले आये?"

"मैंने शान स्टेट में रहते समत घर जाने के बहुत प्रयत्न किये। असफल रहा। सोचा भारत चल कर पढ़ सकूँगा। इसलिए फिर भारत चला आया!"

"तो रंगून से कब चले?"

"रंगून से २० अगस्त को साढ़े बारह बजे चल कर २४ अगस्त को कलकत्ता; कलकत्ते से २५ अगस्त को बनारस, बर्मी रैस्ट हाउस, सारनाथ।"

"तो फिर सारनाथ पहुँच गये?"

"हाँ, सारनाथ पहुँचने पर मुझ से पूछा गया—कहाँ रहोगे? कहाँ जाओगे?"

"मैं क्या उत्तर देता? मुझे यहाँ दिल्ली विहार में काम करने के लिये भेज दिया है। मैं पढ़ना चाहता हूँ। काम से जब-जब छुट्टी मिलती है, पढ़ता हूँ। नाईट स्कूल में भी पढ़ना

चाहता हूँ, किन्तु वहाँ फ़ीस लगती है।"

"ओन्सेन ! तुम्हें जिस स्कूल में पढ़ना मिला है, उस स्कूल में पढ़ने का सब को सौभाग्य नहीं होता। तुम जीवन के स्कूल में पढ़े हो और अच्छी तरह पढ़े हो। मुझे इसमें कुछ सन्देह नहीं कि तुम अब शीघ्र ही स्कूली पढ़ाई भी पढ़ लोगे। मुझसे जो कुछ बन सकेगा, करूँगा।"

"मैं चाहता हूँ कि मैं अब यहीं रहकर पढ़-लिख लूँ। अब से फिर यह कोई न पूछे—तुम कहाँ रहोगे, कहाँ जाओगे ?"

"पढ़-लिख कर तुम क्या करना चाहते हो ?"

"डाक्टर या लेखक बनना।"

"तुम दोनों बन सकते हो।"

वार्ता समाप्त करते हुए मैंने पूछा—"औन्सेन ! तुम्हारी माता का क्या हाल है ? कुछ पत्र-वत्र आता है ?"

"वह नहीं जानती कि मैं जीवित भी हूँ अथवा नहीं, और मैं भी नहीं जानता कि वह जीवित है या नहीं।"

लड़के के अकेलेपन ने जैसे मुझे कँपा दिया।

—भदन्त आनन्द कौसलायन

पशु-पक्षियों की पार्लमेंट

निर्जन जंगल के विशाल मैदान में, आधी रात के आध घंटे बाद पशु-पक्षियों की एक महती सभा बैठी, जिसमें सब प्रकार के पशु-पक्षियों के प्रतिनिधि शामिल थे। दर्शक रूप से भी बहुत से आता विद्यमान थे। सभापति का आसन श्रीमान् वीरवर केसरीसिंह जी ने सुशोभित किया था। जिस समय सभापति महाशय मिस्टर चीताराम, पं० बकरीमल और लाला लकड़भग्घा मल के साथ सभा मण्डप में पधारे, उस समय प्रतिनिधियों के हर्ष का ठिकाना न रहा! सबने अपनी-अपनी भाषा में उनका एक साथ स्वागत किया। रेंकने, भौंकने, चीखने, चिंघाड़ने, रंभाने, बिलबिलाने, चहचहाने आदि की सम्मिलित ध्वनि ने युगान्तर उपस्थित कर दिया। सबसे पहले श्रीमती लोमड़ी, श्रीमती बिल्ली और श्रीमती कुक्कुरी देवी ने स्वागत गान गाया। फिर मिस्टर भेड़ियाराम खड़े हुए और आपने आध घण्टे में सारा स्वागत भाषण पढ़ डाला। सभापति महोदय ने उपस्थित प्रतिनिधियों को धन्यवाद देते हुए कहा—

"भाइयो, आज की सभा का उद्देश्य हज़रत इन्सान से असहयोग करना है। इस दुष्ट के द्वारा हम लोगों को जो घोर कष्ट पहुँचाया जाता है उससे हम बहुत दुःखी हैं। आत्मरक्षा के उपायों पर विचार न करना कायरता है। मैं अपना भाषण पीछे दूँगा, पहले आप लोग निर्भय और निःसंकोच होकर अपने-अपने विचार प्रकट करें। देखिये, सभा में गड़बड़ी न होने पावे। विविध मत-

सम्प्रदायों और सूरत-शकलों के प्रतिनिधियों की यह पहली 'पार्लमेंट' है। अतएव एक को दूसरे के भावों का पूरा ध्यान रखना चाहिए। एक बात ध्यान में और रहे। हम लोग आपस में भले ही मतभेद रक्खें, पर इन्सान के मुकाबिले में सबको एक बन जाना चाहिए। अच्छा, अब श्रीमती गाय देवी अपना भाषण करेंगी।"

श्रीमती गोमाता जी ने पूँछ हिलाकर रंभाते हुए कहा—"भाइयो, कैसे दुःख की बात है, मनुष्य मुझे पकड़ कर अपने घरों में बांध लेते हैं। मेरे आगे कूड़ा-करकट फेंककर सारा दूध गटक जाते हैं। मेरी प्रिय सन्तान देखती ही रह जाती है! सब जानते हैं कि माता का दूध उसके बच्चों के लिए होता है; पर मेरा दूध दूसरों के लिए है।......मेरे पुत्र शीत-घाम की कुछ भी परवाह न कर घोर पुरुषार्थ करने के बाद कहीं रूखा-सूखा भूसा पाते हैं। इस घोर अन्याय का नाम मनुष्यों ने "परोपकार" और "गो-रक्षा" रख छोड़ा है। बाज़ आई मैं इस 'परोपकार' से। मेरे खाने के लिए परमात्मा ने बहुत दिया है। मैं नहीं चाहती कि परोपकार के 'पोटले' ये इन्सान मेरी जाति पर और अधिक अन्याय करें।"

इस वक्तव्य का समर्थन भाषण-पटु भैंस और विवेकशीला बकरी ने भी बड़े मर्मस्पर्शी शब्दों में किया और कहा—दर असल हमारे साथ घोर अन्याय होता है। फिर श्री देव गर्दभ जी बोले—

"महाशयो, मेरी कथा न पूछिए, मेरे जीवन से तो मौत ही अच्छी है। रात दिन काम करना, पीठ पर डण्डे खाना, भूख से घबराना, बस, यही मेरी क़िस्मत में बदा है! इतना घोर

पुरुपार्थ करने पर भी हजरत इन्सान मुझे बेवकूफ ही कहकर पुकारता है; कान पकड़कर बुलाता और डण्डे मारकर चलाता है। हे सभापति ! मुझे इस घोर दुःख से बचाइए ; मैं मर जाऊँगा ; मुझे मनुष्य की 'यह परोपकारिता' न ीं चाहिए। सच समझिए, अगर मैं इतना परिश्रम व्याकरण पढ़ने मैं करता तो आज महामहोपाध्याय हो जाता। परन्तु सज्जनों, मेरा तो लोक बना न परलोक !" इतना कह कर श्री गर्दभदेव जी का जी भर आया और आप बीच ही में बैठ गए ! [और कुंवर कुत्ता कुमार जी बोलने उठे—]

'सज्जनो, आप जानते हैं, मैं भाई भेड़िया का चाचाज़ाद भाई हूँ। परन्तु इन्सान के कुसंग ने मुझे परमुखापेक्षी और चापलूस बना दिया है। एक टुकड़े की खातिर मुझे उसकी अजहद खुशामद करनी पड़ती है। यहाँ तक कि मैं अपने सगोत्री भाइयों से भी प्रेम—पूर्वक वार्त्तालाप नहीं करता, सदैव द्वेष दर्शाता रहता हूँ। तो भी मुझे पेट—भर रोटी नहीं मिलती। हमारे कितने ही भाइयों ने, स्वामि-भक्ति के कारण इन्सान के लिए टुकड़ों और केवल टुकड़ों के लिए—अपने अमूल्य शरीर बलिदान कर दिये। परन्तु इस खुदग़रज कौम को हमारे हाल पर तनिक भी तरस न आया ! उसने मेरे विरुद्ध नाना प्रकार की किम्वदन्तियाँ गढ़ डालीं ! मेरा घोर अपमान किया। चाकरी को निन्दापूर्वक 'श्वान-वृत्ति' के नाम से पुकारा, और बुरी मौत को 'कुत्ते की मौत' कहा ! क्या इसी का नाम कृतज्ञता है ? क्या सच्ची सेवा का यही प्रशंसनीय फल है कि हम तो इन्सान के लिये प्राण तक दे दें, अपने कुनबे को भी त्याग दें, परन्तु हजरत इन्सान रोटी के टुकड़े तक से हमें महरूम रखें,

ग्रौर कभी कुछ खिला दें तो इस 'उपकार' पर फूले न समावें। मैं ऐसे नाशुकरे इन्सान पर लानत का प्रस्ताव पास करने की प्रार्थना करता हूँ। [इस के पश्चात भाई भेड़िया मल की वारी ग्राई। वे बोले—]

"उदार भाइयों, मुझे ग्रपने चचेरे भाई कुत्ते की कष्ट-कथा सुनकर घोर दुःख हुग्रा। वास्तव में, ग्रपने जातीय गौरव को भूलकर, भाइयों का साथ न देने वालों की, ऐसी ही दुर्गति होती है। निस्सन्देह कुत्ता हमारा भाई है। पर वह टुकड़ों की खातिर दूसरी क़ौम का ग़ुलाम वन गया।

(नोट—यहां माननीय सभापति जी ने भाई भेड़िया मल को यह कहकर रोक दिया—तुम्हें ग्रपनी शिकायतें पेश करनी चाहिये थीं। दूसरों के सम्बन्ध में, ग्राक्षेपपूर्वक कुछ कहने या उनकी समालोचना करने का ग्रधिकार तुम्हें नहीं दिया गया" यह सुन कर भाई भेड़ियामल उदास होकर बैठ गये। फिर हजरत हाथी खां को बोलने की ग्राज्ञा मिली।)

"सज्जनों, हमने भी कम कारनामे नहीं दिखाये। पर ग्रब नयी रोशनी वाले इन्सान द्वारा हमारा जो निरादर किया जाता है, उसे हम कह नहीं सकते। भला कुछ ठिकाना है! क्या इन्सान को ग्रक्ल इसलिए मिली है कि वह 'ग्रकुंश' के रूप में हमारे भारी भाल पर ग्राक्रमरण करता रहे। इतने बड़े हम गजराजों के लिए यह शर्म की वात है! इस लोकतन्त्र-शासन के युग में इस प्रकार ग्रपमानित होना कोई पसन्द न करेगा। शिकार के समय हम ग्रपनी छाती ग्रड़ा देते हैं; पर ग्रपने ऊपर वैठे हुए इन्सान तक कोई चोट नहीं ग्राने देते। गहरी नदी में खुद घुस जाते हैं, पर ग्रपने शासक सवार पर, छींटें भी

नहीं पड़ने देते। ज़रा पुराना इतिहास उठाकर तो पढ़ो, हमारे कैसे कैसे कारनामे हैं। आजकल के राजाओं ने हमें जनाना बना दिया है। हम देशी राजाओं की तरह, बस, कभी-कभी जुलूसों की शोभा बढ़ाने वाले दिखावटी समझे जाने लगे! हमारा सब शौर्य नष्ट किया जा रहा है। इतना बड़ा महायुद्ध हो गया, पर हमारा उसमें नाम तक नहीं! इससे अधिक अपमान हमारा क्या होगा? अगर मेरा बस चले तो, मैं, इस 'अक्ल के पुतले' इन्सान की सारी समझ ठीक कर दूं।

भाइयों, साहस करो, निरंकुश होते हुए भी आप एक अंकुश के सहारे नाच रहे हैं यह दुःख की बात है।

(फिर ठाकुर घोड़ा सिंह का भाषण हुआ—)

"भाइयो और भाभियो, हमारी जाति ने इन्सान का अपूर्व हित किया है। जिस समय न 'मोटर' थी न 'साइकल' और न हवाई जहाज़ थे, उस समय हम ही इन्सान को सर्वत्र घुमाते फिरते थे। हमारी क़दर भी बहुत होती थी। परन्तु जब से ये पों पों चली है, तब से हमारी बड़ी बेक़दरी हो गयी है। जिन अस्तबलों में पहले हम हर्ष से हिन—हिनाया करते थे, आज उन में 'पेट्रोलियम' की दुर्गन्ध आती है। ज्यों ही मनुष्य 'मोटर कार' खरीदने योग्य होता है, त्यों ही वह उसे खरीद कर हमें जवाब दे देता है! संक्रामक रोग बराबर बढ़ रहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि थोड़े ही दिनों में हमारी कोई बात भी न पूछेगा, हम लोग 'किराये के टट्टू' से अधिक अपनी पोज़ीशन न रख सकेंगे। आप जानते हैं 'टट्टू' नामधारी हमारे लघु भ्राताओं की कितनी दुर्गति है? उन्न से बोझ ढुलवाया जाता है, कूड़ा उठवाया जाता है, पाखाना फिंकवाया जाता है, इक्कों में जोत-जोत कर उनके

कमर कन्धों पर ज़ख्म कर दिये जाते हैं। भले ही मक्खियाँ भिन-भिनाती रहें, पर, हज़रत इन्सान को इससे क्या, क्या यह हमारे उपकारों के प्रति घोर कृतघ्नता नहीं है ? क्या उदार-चेता वीर-शिरोमणि 'चेतक' के कुल की यह दुर्दशा होनी चाहिये ? भाइयों भावी आपत्ति का अभी से इलाज़ करो !"

(चौधरी उष्ट्रसिंह बोले)

"भाइयो, क्या कहें इन्सान का बोझ ढोते-ढोते मरे जाते हैं, गाड़ियाँ खींचते खींचते अक्ल हैरान हैं। जिस मरु-भूमि में, हमारे प्रतिनिधि भाइयों में से कोई पसन्द न करेगा, उसमें हमें भभकती भूभल पर चलना पड़ता है। अगर वहां हम न हों तो, इन्सान की सारी अक्ल ठिकाने आ जाय। परन्तु तो भी हमारे चारे का कोई प्रबन्ध नहीं। स्वयं पत्ती तोड़ना और पेट भरना। काम तो लिया जाय पर खाना न दिया जाय, यह कहाँ का इन्साफ है ? हमें मनुष्य की दयालुता नहीं चाहिए, हम तो उस के आश्रय के बिना ही अच्छे हैं।"

इसके बाद सभापति श्री केसरी-सिंह जी ने कहा—अब दूसरे वर्ग के प्रतिनिधि बोलेंगे। पहिले पक्षियों की 'स्पीच' होगी फिर बिलवासियों को अवसर दिया जायेगा। तो अब मि० तोताराम—

"सज्जनो, इन्सान कहता है कि मैं प्यार का पुतला हूँ, गुणों का ग्राहक हूँ। परन्तु यह सब उसका ढोंग है। आप जानते हैं, मेरी जाति के लोग बातूनी ज्यादा होते हैं, खूब मीठी मीठी बातें बनाते हैं। बस, इसीलिए हज़रत इन्सान ने अपने कनरसियापन के कारण, 'अहिंसा' के नाम पर हमें पिंजड़े में बन्द करना शुरू कर दिया ! देखिये, मेरे भाइयों का पिंजरबद्ध हो कर सारा जीवन नष्ट हो गया ! वे नहीं जानते कि स्वतन्त्र वायुमण्डल में सांस

लेना कैसा होता है ? हमारा स्वातन्त्र्य और स्वास्थ्य नष्ट करके मनुष्य कहता है—मैंने पक्षियों की रक्षा की है ! उनको दाना खिलाया और बचाया है ! मैं परोपकार का पुंज और अहिंसा का अवतार हूँ ! परन्तु भाइयो, लानत है इस "परोपकार" पर जो हमें नष्ट-भ्रष्ट करके किया जाता है ? परमात्मा ज़मीन पर रेंगने वाली चींटी को भी खाना देता है तो क्या हम व्योम-विहारी लोग भूखों मर जायेंगे। हम खुदगरज इन्सान की ऐसी बात से बहुत तंग हैं।"

श्रीमती मैना-देवी जी ने इस व्याख्यान का समर्थन किया। और भी कई पक्षियों ने बोलने को पंख फड़-फड़ाये, परन्तु सभापति जी ने उन्हें यह कह कर रोक दिया कि 'समय थोड़ा है, सुबह होने वाली है ; अतः सब बिलवासी लोग कुछ कहें।' पंडित चुहिया राम जी ने चोंच खोली—

"सज्जनो, मुझे अपनी जाति की दुर्दशा देख कर बड़ा दुःख है। आप जानते हैं कि प्रथम तो हमारे छोटे-से शरीर पर पृथुलतुन्द श्री गणेश जी को सवार कर देवताओं ने घोर अन्याय किया है। खैर, उनकी बात भी जाने दीजिये। ये अहिंसाभिमानी मनुष्य हमारे नाश का नित-नया उपाय सोचते रहते हैं। कभी पिंजड़ों में पकड़ कर हमारा नाश करते हैं, और कभी हमारे घरों में ज़हर की गोलियाँ पटकते हैं, जिससे हम मर जायें। "अशरफ़उल्मखलूक़ात" इन्सान की इस हिमाक़त से, अब तक हमारे हज़ारों लाखों भाई अपनी ऐहिक लीला समाप्त कर परलोकवासी बन चुके हैं। ये भले मानस यह नहीं समझते कि 'प्लेग' आने की सर्व-प्रथम सूचना हम अपने शरीरों को बलि-वेदि पर चढ़ा कर देते हैं। हमारी इस सूचना से जो लोग प्लेग-प्रभावित स्थान को छोड़ देते हैं, वे बच जाते हैं।

इस उपकार का बदला हमें मिलता है, 'सर्वनाश'। बलिहारी इस इन्सानियत की! और देखिये, आज चारों ओर 'सुधार-सुधार' और 'उन्नति-उन्नति' का ढोल पिट रहा है; परन्तु कोई यह नहीं सोचता कि इन तरक्क़ियों के तरानों का 'श्रीगणेश' कहाँ हुआ। भाइयो, बताइये यदि हम शिवरात्रि को टंकारा के एक शिवालय की शिवमूर्ति पर चावल चबाकर मूलशंकर को उपदेश न देते तो महर्षि दयानन्द कहाँ से आते? और भारतोद्धार कौन करता? इन सब उपकारों का बदला इंसान की ओर से मिलता है—'सर्वनाश'। कैसे दुःख और परिताप की बात है!'

वाचाल बन्दर और बीबी बिल्ला—

दोनों ने एक स्वर से कहा कि हमारी राय में, हमारे पूर्व वक्ताओं ने हज़रत इन्सान पर झूठे इलज़ाम लगाये हैं। हमें देखिये, हम स्वतन्त्रता-पूर्वक चरते-विचरते हैं, और मनुष्य से खूब छीन-झपट कर खाते हैं, परन्तु हमारा कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता! बिल्ली ने कहा—"मैं तो घरों के कोने-कोने में घुस जाती हूँ और खूब मौज उड़ाती हूँ।" बन्दर बोला "हनुमान बन कर गुड़धानी खाना और गुर्राना हमरा काम है। बात वास्तव में यह है कि इन्सान से बाज़ी मारने के लिए चातुर्य की ज़रूरत है; जो जितना ही सीधा-सादा होता है, उतना ही पिटता है। महाशयो, हमें इन्सान से कोई शिकायत नहीं।"

इसके बाद सभापति श्री केसरीसिंह का अन्तिम भाषण हुआ। आपने कहा—

"भाइयो, मैंने सब व्याख्यान ध्यानपूर्वक सुने। वास्तव में इस 'अशरफ़-उल-मखलूक़ात' कहे जाने वाले इन्सान ने हम लोगों की

नाक में दम कर रक्खा है। आप लोगों की कष्ट कथा सुन कर, मेरे दुःख का ठिकाना नहीं रहा। आप यह न समझें कि मेरी जाति के लोग पशुपति परिवार के होने से सुखी हैं। हमारी जाति पर भी इन्सान का घोर अन्याय होता है। हमें तो वह देख ही नहीं सकता, खबर लगते ही मारे गोलियों के हमें हलाक कर दिया जाता है। हमें कठहरों में बन्द कर के हमारी स्वतन्त्रता छीन ली जाती है। किसी समय हम सारे देश में आनन्द से चरते-विचरते थे, पर, अब तो वेदज्ञों की तरह हमारे परिवार के लोग भी केवल कहीं-कहीं दिखाई देते हैं। इन्सान की जितनी शत्रुता हमारे वंश से है, उतनी किसी से नहीं। अभी आप ने हज़रत बन्दर और बीबी बिल्ली के व्याख्यान सुने, उन्होंने इन्सान की हिमायत की है, पर इन भूले भाई और भटकी बहिन को यह नहीं खबर कि उचक्कापन करना या छीन-झपटी से काम लेना पशु-परिवार की वंश-परम्परा के प्रतिकूल है। इसके लिए मनुष्यों के 'राष्ट्र' नामधारी समुदाय ही बहुत हैं। क्या हज़रत बन्दर क़लन्दरों द्वारा लकड़ी के बल नहीं नचाये जाते ? क्या उन्हें पेट दिखा दिखा कर टुकड़े नहीं माँगने पड़ते ? इस घोर घृणित व्यवहार पर भी वह इन्सान का पक्ष लेते हैं, शर्म की बात है ! (चारों ओर से—शर्म ! शर्म !! शर्म !!!)

बीबी बिल्ली का लुक-छिप कर इन्सान के झूठे बर्तनों को चाट लेना, या दाव-घात से कुछ खा-पी आना कोई गौरव की बात नहीं है ; इसके लिए इन्हें अभिमान न करना चाहिये। अच्छा मैंने अब खूब सोच लिया, और मुझे सब के उद्धार की एक बात सूझी है। महामहोपाध्याय श्री गजराज जी और हम जैसे शक्तिसम्पन्न वीरवरों पर काबू करना, हमारे अन्य बलहीन भाइयों को सताना, मारने विनाश के लिए गोला-बारुद-तलवार-बन्दूक

आदि बनाना, ऐसी बातें हैं जो अल्प-शक्ति मनुष्य की बुद्धि के कारण ही हो रही हैं। बुद्धि न हो तो यह इन्सान साधारण कीड़े-पतंगों से भी घटिया दरजे का बना रहे। सारे अनर्थों की जड़ मनुष्य की बुद्धि है। इसलिए मेरी सम्मति में इस महासभा से, यह प्रस्ताव पास करके "खुदावन्द ताला" के पास भेजना चाहिए कि वह इन्सान से अक्ल छीन कर, अपनी प्यारी प्रजा में सुख शान्ति स्थापित करे, और हम लोगों पर अन्याय न होने दे।"

उपस्थित समुदाय ने गगनबेधी गर्जनापूर्वक सभापति के प्रस्ताव का समर्थन किया और वह सर्वसम्मति से पास हो गया। सभा बर्खास्त हुई और सब लोग अपने-अपने घरों को सिधारे।

—हरिशंकर शर्मा
('चिड़िया घर' से)

जनता का निर्णय

[स्थान—उदयपुर, प्रताप का घर। समय—प्रभात]

(विचार-मग्न प्रताप; सहसा सामंत का प्रवेश)

सामंत—राणा !

प्रताप—(चौंककर) कौन ? सामंत जी ! कहिए, क्या संवाद है ?

सामंत—क्या कहूँ ? बस अब नहीं देखा जाता। जी चाहता है, जन्म-जन्मान्तर के लिए आँखें मूँद लूँ !

प्रताप—क्यों-क्यों, क्या कोई विशेष घटना···?

सामंत—नहीं राणा ! यही नित्य की दुर्दशा प्रति-दिन नई मालूम होती है, काँटे की तरह इसकी कसक पल-पल पर अपरिचित-सी, नवीन-सी जान पड़ती है।

प्रताप—राजमहल का कोई विशेष संवाद है ?

सामंत—राममहल ? उसे राजमहल न कहो राणा, उसके वक्षःस्थल पर वासनाओं का अविराम ताँडव देख कर भी क्या उसे पिशाचपुरी न कहना चाहिए ? देखते नहीं हो राणा, आज बाप्पा रावल का वह उज्जवल राज--मुकुट कायरता-कलंक से काला हो रहा है, मखमली म्यान में भुवन-विजय वीरों की करारी कटारी पर ज़ंग चढ़ रहा है ! क्या यह सब चुप-चाप सह लेने की बातें हैं ? देव, उस दिन का अमर इतिहास क्या सहज ही भुलाया जा सकता है, जब (कण्ठा वरोध)

प्रताप—हाँ-हाँ कहो, भाई, जब···

सामंत—जब स्वाधीनता की आराध्य देवी, स्वच्छन्द वायु के झकोरों से, स्वर्ण उषा के अधरों से, मुक्त-मेघ की बूंदों

से, तेजस्वी सूर्य-चन्द्र की स्वतन्त्र किरणों से, इसी मरु-भूमि पर उतर कर क्रीड़ा किया करती थी; इसी अभागे मेवाड़ की उन्नत रक्त-ध्वजा उसके पावन-चरणों के एक-एक चुम्बन पर प्रफुल्ल होकर चित्तौड़ दुर्ग के सर्वोच्च शिखर पर बड़े वेग से फहरा उठती थी ? तब मेवाड़ को 'अपना' कहते समय हमारे वीर पूर्वजों की छाती उठती थी, मस्तक ऊँचा हो जाता था और आरक्त आँखों के कोनों से संतोष और स्वाभिमान की किरणें फूट निकलती थीं।

किन्तु अब···!

प्रताप—अब भी मेवाड़ को माँ कहते समय किसे रोमांच न होगा ? क्या कहते हो भाई, हम माँ को भूल गए ? संभव है। पर माँ तो हमें नहीं भूली ! कल जिसे 'अपनी' कहने में गर्व होता था, उसी को आज कोई केवल इसलिए 'पराई' कैसे कहेगा कि उसे 'अपनी' कहने में लाज लगती है। क्षुब्ध न हो सामंत जी ! शक्ति और साधन तो देश-भक्ति का शरीर मात्र है। उसकी अन्तरात्मा तो हृदय का वह उज्जवल भाव है, जो हम में उसके लिए पतंगे की तरह मर-मिटने का साहस भर देता है।

सामंत—फिर भी, जिनके कंधों पर आज चित्तौड़ के उद्धार का भार है, लाखों प्रजाजनों की उत्सुक आंखें जिनकी विशाल भुजाओं से आशा रखती हैं, उन्हीं को इस प्रकार विलासिता और बुज़दिली का जीवन बिताने का क्या अधिकार है ? मेवाड़ का राजमुकुट इस प्रकार कायरों के मस्तक का भूषण बन कर कब तक अपनी हँसी कराता रहेगा ?

प्रताप—यह प्रजा का प्रश्न है—जनता का अधिकार है। स्वदेश

के सच्चे सैनिक, अधिकारों के लोभ से सर्वस्व बलिदान नहीं करते। हमारे हृदय में लगन और त्याग की भावना तो हो, सारा संसार क्षण भर में हमारा सहायक बन जायगा।

(सहसा नेपथ्य में "हर-हर महादेव", "मेवाड़पति की जय" "महाराणा प्रताप की जय" की ध्वनि। प्रताप चौंकते हैं—कुछ खिन्न भी होते हैं)

प्रताप—(स्वागत) इस कुसमय में यह विजय-नाद कैसा ? मेवाड़ के अकिंचन सेवक को किसने कहा 'महाराणा' किसकी जय और किसकी विजय ? जननी जन्म-भूमि चित्तौड़ के उद्धार के पहले यह जय-नाद उपहास-सा प्रतीत होता है।

(चन्द्रावत कृष्ण का, एक हाथ में मुकुट और दूसरे में तलवार लिए प्रवेश)

प्रताप—(खड़े होकर) कौन ? चन्द्रावत कृष्ण जी ! आइए ! मेवाड़ के छोटे से सैनिक को 'महाराणा' कह कर क्या विनोद करने आए हैं ?

चन्द्रावत—महाराणा, यह विनोद नहीं, सत्य है—सूर्योदय की तरह सुन्दर और सुस्पष्ट। आज चित्तोड़ का भाग जागा है। उदयपुर के उत्सुक वीर आपको बधाई देने आ रहे हैं।

(कुछ राजपूतों का प्रवेश)

राजपूत—महाराणा की जय हो ?

(प्रताप पहले किंचित संकुचित होते हैं और फिर उनका स्वागत करते हैं)

सामंत—(सबको यथास्थान बिठाकर) संभवतः किसी आकस्मिक आघात से राणा का गृह पवित्र करने को मेवाड़ वीरों की यह मन्दाकिनी आज इधर से बह निकली है। क्यों न,

चन्दावत जी ?

चन्द्रावत—(खड़े होकर) वीरो, तुम साक्षी हो। आज मैं प्रजा के प्रतिनिधि की हैसियत से वीरवर बाप्पा रावल का यह उज्जवल राजमुकुट—राजपुत्र प्रताप को नहीं, स्वदेश के सच्चे सैनिक को सौंपता हूँ। इसलिए नहीं कि इसे पहन कर राजा प्रजा पर अत्याचार करे, इसलिए नहीं कि इसे पहन कर प्रताप चित्तौड़ को भूल जायँ, इसलिए नहीं कि इसे पहन कर सेवक प्रभु बन जाये। मैं इसे सैनिक प्रताप को देता हूँ—वीर प्रताप को देता हूँ—व्रती प्रताप को देता हूँ—केवल तेज पर मुग्ध होकर, त्याग का सिर झुका कर, न्याय का भक्त बन कर, मातृ-भूमि पर मर मिटने की आपकी अमर अभिलाषा से चित्तौड़ के उद्धार की आशा रख कर। प्रजा का निर्णय 'नहीं' सुनना नहीं जानता देव, यह जनता की धरोहर, प्रजा की भेंट—कर्त्तव्य समझ कर ही—स्वीकार कीजिए।

(राजपूत जयनाद करते हैं। प्रताप घुटने टेक देते हैं)

प्रताप—आप के आग्रह के आगे सिर झुकाना मेरा धर्म है। मैं खूब जानता हूँ वीरो, यह काँटों का ताज है; शूलों की सेज है, न्याय की दुधारी तलबार है; त्याग का सर्वोच्च शिखर है! यह मुकुट नहीं,—कर्त्तव्य है! जितना उज्जवल है, उतना ही कटु है! यह प्रभुता का चिन्ह नहीं, सेवा का निशान है; राजकुमारों का विलास नहीं, वीरों का बलिदान है। मैं इस विष के प्याले को अपने प्रभु की—प्रजा की आज्ञा से अमृत की तरह पीने को तैयार हूँ।

(चन्द्रावत सिर पर मुकुट रखते हैं, हाथ, में तलवार देते हैं राजपूत जाय-नाद करते हैं)

चन्द्रावत—प्यारे महाराणा ! आपका सिंहासन राजमहलों में नहीं—प्रजाजनों के हृदय में बिछे और आपका अभिषेक क्षुद्र जल-कणों से नहीं—स्वाधीनता संग्राम में वीरों के हृदय-रक्त की लाल-लाल बूँदों से हो !

प्रताप—(तलवार खींच कर) भवानी ! तू साक्षी है, जनता जनार्दन ने आज मुझे अपना सेवक चुना है। मैं आज तुझे छू कर प्रतिज्ञा करता हूँ कि जन्म-भर मातृ-भूमि मेवाड़ के हित में, तन, मन, सर्वस्व अर्पण करने में मुँह न मोड़ूँगा। सागर मर्यादा, हिमालय गौरव, सूरज तेज, वायु वेग भले ही छोड़ दे, यह प्रताप प्राण छोड़ कर भी प्रण न छोड़ेगा। भाइयो, जब तक चित्तौड़ का उद्धार न कर लूँगा, सत्य कहता हूँ, कुटी में रहूँगा, पत्तल में खाऊँगा और तृण पर सोऊँगा। आज ही से—नहीं, इसी क्षण से मेरे लिए ये राज-प्रासाद, ये स्वर्ण-शृंगार और यह आनन्द-विहार तृण से भी तुच्छ हैं ! माँ का स्वर्ण-संसार आज श्मशान हो रहा है—प्यारे चित्तौड़ में एक भी दीपक नहीं—उसका सम्मान आज शत्रुओं की पद-रज बना हुआ है ! क्या अब भी हम सुख की नींद सो सकते हैं ?

(राजपूतों की खड्गों की झंकार और उनकी 'नहीं' 'नहीं' की ध्वनि)

प्रताप—चित्तौड़ के सपूतो ! मेवाड़ के वीरो ! आज यदि तुम्हारे उष्ण रक्त में कुछ भी उबाल आता है तो मेरी प्रतिज्ञा में सहायक बनो। आओ, आज से हमारे हृदय में खाते-पीते, सोते-जागते, उठते-बैठते, लड़ते-भिड़ते, आठों पहर स्वाधीनता की प्रबल आकांक्षा प्रलयाग्नि बन कर भड़का करे। उसकी एक-एक चिनगारी गुलामी के विकट वन को भस्म करती रहे। चित्तौड़ के उद्धार के पहले हमें, पृथ्वी तो क्या स्वर्ग में भी शान्ति न मिले।

राजपूत—हम चित्तौड़ के लिए आपके इङ्गित पर हँसते-हँसते मर मिटेंगे।

चन्द्रावत—मेवाड़ के सूर्य ! बरसो से जो अभिलाषा इस हृदय में छिपी पड़ी थी वह आज पूरी हुई। चित्तौड़ की दुर्दशा पर रोते-रोते आँखें अन्धी हो चली थीं—हृदय फटा जाता था। कोई ऐसा नायक नजर नहीं आता था जिसके इङ्गित पर मेवाड़ी वीर हँसते-हँसते चित्तौड़ की बलिवेदी पर अपने प्राण होम देते। राणा ! तुम्हें पाकर आज हम धन्य हैं, मेवाड़ धन्य है, और धन्य है सीसोदिया वंश।

प्रताप—वीरो, मेवाड़ के अभिमान ! चित्तौड़ की आशा ! तुम्हें पाकर हृदय उत्साह से भर गया है। चित्तौड़ के खण्डहरों का शून्य हृदय हमारी अकर्मण्यता पर हाहाकार कर रहा है। एक बार उसे फिर स्वाधीनता-संग्राम के लाल दिन दिखाने को जी चाहता है। चलो, हम संसार को दिखा दें कि पद-दलित देशों के शेर-शूर किस तरह शत्रुओं की जड़ हिला देते हैं। आज से मेवाड़ का प्रत्येक पर्वत हमारा दुर्ग, प्रत्येक वन हमारा युद्ध-क्षेत्र और प्रत्येक गुफा हमारा राजमहल होगी। चित्तौड़ का उद्धार हमारा लक्ष्य होगा और बलिदान हमारा मार्ग। हर-हर महादेव !

(प्रस्थान)

—जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'

['प्रताप-प्रतिज्ञा' नाटक से]

कीड़ों की दुनिया में

मनुष्य को अपने मस्तिष्क पर गर्व है और साथ-ही-साथ गर्व है उसे उन तमाम वस्तुओं पर भी जो कि उसके मस्तिष्क की उपज हैं। उसने जीवन-सम्बन्धी विभिन्न दिशाओं में उन्नति की है और साथ ही-साथ एक ऐसी व्यवस्था में अपने को बाँध लिया है जिसे कि हम समाज कहते हैं। सामाजिक व्यवस्था का सुचारू-रूप से संचालन होते रहने के लिए उसने कुछ नियम बना लिये हैं, और उन्हीं पर चलने का वह पूर्ण प्रयत्न किया करता है। साथ-ही-साथ उसमें कुछ ऐसी भावनाएँ भी हैं जो कि उन नियमों में समय-असमय अपवाद निकालने तथा किसी विशेष परिस्थिति में किसी विशेष नियम का उल्लंघन कर बैठने वाले को क्षमा कर देने या अधिक कठोर दण्ड न देने पर बाध्य कर देती हैं। इस प्रकार चलता रहता है उसका समाज, परन्तु······।

परन्तु इस पर गर्व करने का उसके लिए कोई कारण नहीं। वह सम्भवतः नहीं जानता कि इसी धरती पर कुछ ऐसे प्राणी भी हैं जिन्हें वह उपेक्षा की दृष्टि से देखता है, नगण्य समझता है; जिनके मरने जीने की वह रत्ती भर चिन्ता नहीं करता, परन्तु जिनकी सामाजिक व्यवस्था उसकी सामाजिक व्यवस्था से कहीं अधिक उन्नत, कहीं अधिक परिष्कृत, कहीं अधिक दृढ़, कहीं अधिक कठोर, तथा कहीं अधिक नियमित है—ऐसी व्यवस्था जिसके नियमों में कहीं पर भी अपवाद नहीं ऐसी व्यवस्था जिसके बन्धनो में कहीं पर भी ढील नहीं, ऐसी व्यवस्था जिसमें अपराध

के लिए कहीं पर भी दया या क्षमा नहीं ; तथा ऐसी व्यवस्था जिसके नियमों का सम्पूर्णता में पालन करते ही मर-मिटना सबसे बड़ा नियम है। ऐसी व्यवस्था हम पाते हैं उन कीटों के समाज में जिनमें दीमक, चीटियाँ, मधु-मक्खियाँ, ततैया, भिड़, बर्र, तथा गुबरैले आदि प्राणी आते हैं। पालन भी करता है इनका प्रत्येक सदस्य अपने समाज की व्यवस्था में निर्धारित प्रत्येक नियम, विरोध की भावना से रहित होकर प्रसन्नता के साथ।

यदि आपको इनके राजतन्त्र शासन की एक झलक देखनी हो तो उधर मधु-मक्खियों के उस छत्ते की ओर दृष्टि डालिये। वह देखिये, दास-दासियाँ सब दौड़-दौड़ कर अपना-अपना काम कर रही हैं। किस को भी इतना अवकाश नहीं कि ठहर कर एक दूसरे से बातचीत करे। इनके इस प्रासाद के द्वार पर उधर उस ओर अस्त्र-शस्त्रों से युक्त लम्बे-तगड़े द्वारपालों की एक टुकड़ी खड़ी है जिसकी दृष्टि बचाकर इस गोल के निवास-स्थान में प्रवेश पा जाना किसी भी व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं। परिचितों के अतिरिक्त वह किसी भी अन्य को भीतर नहीं जाने देते। बाहर से भी मारकर भगा देते हैं। उधर उस मैदान की ओर देखिये, कितने सैनिक पंक्ति की पंक्ति बाँधे अपने युद्ध में आने वाले सारे साधनों से युक्त इस प्रतीक्षा में खड़े हैं कि कब कोई शत्रु आये और कब उस पर टूट पड़ा जाय। और उधर देखिये, राज-प्रासाद के निर्माण का काम बराबर चल रहा है। परिवार में नित्य बढ़ते हुए सदस्यों के रहने के लिए राज नये-नये प्रकोष्ठ बना रहे हैं। प्रत्येक कक्षा की रचना बिल्कुल एक ही सी है, सम्भवतः इस कारण कि सदस्यों में परस्पर किसी प्रकार का मन-मुटाव न होने पावे। छत्ते की सफ़ाई बराबर

की जा रही है; पंखों से कूड़ा बुहारा जा रहा है। इससे प्रतीत है कि वह बुहारने वाले कर्मकार इस गोल के मेहतर हैं। उधर वह सम्भवतः धायें हैं जो कि दौड़-दौड़ कर प्रत्येक कोष्ठ में जा रही हैं तथा बच्चों को खिला-पिला रही हैं! कोई अपने पेट में शक्कर भर लाया हैं, कोई जल, कोई पुष्पों से मधु संचित कर लाया है, तो कोई विभिन्न रासायनिक लवण पदार्थ। और देखिये तो कि वह यह सब ले जाकर दे किसे रहे हैं? सम्भवतः यह इस गोल के रसायनज्ञ हैं जो कि अपनी प्रयोगशाला में बैठे हुए इन लायी गई वस्तुओं को विभिन्न रसायनों की सहायता से इस योग्य बनाया करते हैं कि वह वर्षों संग्रहालय में रक्खी रहें और फिर भी खराब न हों। इस प्रकार मधु तय्यार किया जा रहा है।

अब आइये, द्वारपालों से आज्ञा लेकर प्रासाद के भीतर प्रवेश करें! वह देखिये, अपने अन्तःपुर के उस विशेष रचना-सौष्ठव के साथ बनाये गये प्रकोष्ठ में साम्राज्ञी वह चुपचाप लेटी आराम कर रही है। कुछ दासियाँ अपने ओठों से चाट-चाट कर उसके शरीर को साफ़ और सुथरा करने में लगीं हैं, कुछ अपने पंख हिला-हिला कर उसके व्यजन डुला रही हैं, कुछ उसे खिला-पिला रही हैं, तथा कुछ उसके सुख के अन्य साधन प्रस्तुत करने के लिए बार-बार बाहर-भीतर आ-जा रही हैं।

उधर बायीं ओर उन चाँदी के चमकते हुए सहस्त्रों प्रकोष्ठों में उस गिरोह के तमाम सदस्यों के सप्ताहों खाने के लिए खाद्य-सामग्री संग्रहीत है। किसी में पुष्पों का पराग है और किसी में इन्दीवरों का उत्तम मधु। उधर केन्द्र में जो आप दस-बारह सहस्र के लगभग सुन्दर मेहराबदार सुनहले रंग के प्रकोष्ठ देख रहे हैं उनमें अण्डे

रक्खे हुए हैं। बायें हाथ उन पन्द्रह-सोलह सहस्र प्रकोष्ठों में जातक पल रहे हैं और उधर दाहिनी ओर जो तीस-चालीस सहस्र प्रकोष्ट चमक रहे हैं उनमें किशोरावस्था प्राप्त मधु-मक्खियाँ पल रही हैं। देखा आपने कि इस गिरोह का काम कितनी सुन्दरता के साथ चल रहा है? सब अपने-अपने काम में मस्त हैं, कोई भी व्यक्ति एक-दूसरे के काम में हस्तक्षेप नहीं करता!

इस शासन-व्यवस्था में आपने देखा कि राज्य का सर्व-सर्वा सम्राट् नहीं वरन् साम्राज्ञी होती है, और उसी के अर्थ इतना सारा प्रबन्ध किया जाता है। एक बात है, और वह यह कि कीटों के एक गिरोह में एक ही साम्राज्ञी रहती भी है, एक गोल में एक से अधिक साम्राज्ञी के रहने का इनके यहाँ नियम नहीं, इसलिए किसी राजकुमारी के यौवन-वस्था में पदार्पण करने के पूर्व ही उसकी माता या ज्येष्ठ भगिनी—जो भी उस समय उस गोल की साम्राज्ञी हुई—उस गोल को त्याग कर कुछ नौकर-चाकरों को साथ ले अलग जा बसती है। किन्तु उन गिरोहों में, जिनमें कि साम्राज्ञी का शरीर इतना अधिक बढ़ जाता है कि वह अपने स्थान से हिल-डुल भी नहीं सकती, जैसा कि दीमकों में होता है, युवा-वस्था प्राप्त करने पर राजकुमारी स्वयं कुछ कर्मकारों को साथ ले अपने मातृ-गृह से अलग जा बसती है।

साम्राज्ञी अर्थात् बड़ी रानी के घर छोड़कर चले जाने पर जब राजकुमारी, जो कि उसकी पुत्री भी हो सकती है और लघु भगिनी भी, साम्राज्ञी के पद पर आसीन होती है तो वह स्वयं जाकर अपनी उन तमाम छोटी बहिनों की जीवन-लीला समाप्त कर आती है जो कि सन्तानोत्पादन करने के योग्य हो चुकी

होती हैं। ऐसा सम्भवत: वह इसलिए करती है कि उसे शीघ्र ही अपने पद को त्याग कर अन्यत्र जा बसने पर बाध्य न होना पड़े। यदि वह स्वयं जाकर उनका शिरच्छेदन नहीं कर आती तो अपने सैनिकों को इस बात की आज्ञा देती है कि वह उनकी जीवन-लीला समाप्त कर दें। बस, इन भाग्यहीन युवतियों के द्वार पर सैनिकों का कड़ा पहरा बैठ जाता है। कर्मकार इन का भोजन-पान सब बन्द कर देते हैं और यह कुछ ही दिनों में भूख-प्यास से व्याकुल हो अपने प्राणों का विसर्जन कर देने पर बाध्य हो जाती हैं। हाँ! सैनिक इन राजकुमारियों पर हाथ नहीं उठा सकते, उनका शिरच्छेदन नहीं कर सकते। आज्ञा नही उन्हें ऐसा करने की। इसमें अपमान जो होता है नारी जाति का। एक नारी पर हाथ उठाने का अधिकार कीट-समाज में केवल एक नारी को ही है, अन्य को नहीं। परन्तु हाँ! साम्राज्ञी उन राजकुमारियों को मृत्यु के घाट उतार देने की आज्ञा कभी नहीं देतीं जो कि किशोरावस्था में होती हैं, तथा अण्डे देने के योग्य नही होती। यह भी राजतन्त्र शासन का एक नियम है।

अब आइये, इनके प्रजातन्त्र शासन की व्यवस्था देखें। कीट-संसार में राजतन्त्र एंव प्रजातन्त्र शासन में कुछ अधिक अन्तर नहीं होता। गिरोह का सारा-का सारा प्रबन्ध ठीक राजतन्त्र व्यवस्था के सरीखा ही होता है। अन्तर केवल इतना ही है कि प्रजातन्त्र शासन में साम्राज्ञी साम्राज्ञी करके नहीं, वरन उस गिरोह की जीवित अण्डोत्पादक यन्त्र सरीखी मानी जाती है। मधुमक्खियों की ही कुछ जातियों में गिरोह के सर्वेसर्वा उस गोल के कर्मकार माने जाते हैं जो कि साम्राज्ञी की अण्डोत्पादक शक्ति को आवश्यकतानुसार

घटाते या बढ़ाते रहते हैं। जिस समय गिरोह में काम अधिक होता है परन्तु काम करने वालों की संख्या कम, उस समय गिरोह के कर्मकार साम्राज्ञी को भाँति-भाँति के सुन्दर, पौष्टिक तथा गुणकारी अच्छे-अच्छे खाद्य पदार्थ—जैसे मधू, शक्कर, पुष्प-पराग—खाने के लिए देते हैं, तथा उसे निरन्तर एक कोष्ठ से दूसरे कोष्ठ में, दूसरे से तीसरे में, तीसरे से चौथे में, अर्थात् इसी प्रकार छत्ते के प्रत्येक रिक्त कोष्ठ में घुमाते हैं जहाँ कि वह एक-एक अण्डा रखती है; परन्तु इसके विपरीत अवसर आने पर, अर्थात् उस समय जब कि काम कम, भोजन की मात्रा भी कम, परन्तु काम करने वाले पर्याप्त संख्या में, और गिरोह की जनसंख्या अधिक होती हैं, यह कर्मकार साम्राज्ञी के खाने-पीने पर बहुत कुछ प्रतिबन्ध लगा देते हैं। और इस प्रकार उसकी अण्डोत्पादक शक्ति को बहुत ही कम कर देते हैं। यहाँ आपने देखा कि साम्राज्ञी कहने भर की ही साम्राज्ञी है जब कि सारी व्यवस्था कर्मकारों की ही इच्छा के अनुसार होती रहती है। फिर भी इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि साम्राज्ञी की देख-रेख में किसी प्रकार की न्यूनता आने पाती हो। उसका सारा प्रबन्ध उसी भाँति किया जाता है जैसा कि राजतन्त्र शासन की सर्वे-सर्वा साम्राज्ञी का। उसके प्रकोष्ठ औरों के प्रकोष्ठों की भाँति बड़े अधिक सुन्दर तथा साफ़-सुथरे रखे जाते हैं। उसकी सेवा-शुश्रूषा के लिए उसी भाँति पचासों दास-दासियाँ, नौकर-चाकर, तथा कर्मकार लगे रहते हैं, उसे हर तरह से आराम देने का प्रबन्ध ठीक उसी प्रकार किया जाता रहता है। इस बात को भली-भाँति दृष्टि में रखा जाता हैं कि साम्राज्ञी की किसी भी सम्भावित दुर्घटना से मृत्यु न होने पावे, क्योंकि उसके कवलित हो जाने पर उस गिरोह के लिए दूसरी साम्राज्ञी या यों कहना अधिक उत्तम होगा कि दूसरा अण्डा देने वाला यन्त्र लाना कर्मकारों के लिए बहुत ही कठिन हो जाता है।

इतना ही नहीं, इन गिरोहों में साम्राज्ञी स्वयम् भी ऐसा प्रबन्ध करती है कि उसके नौकर-चाकर उसकी अवहेलना न करें, उसकी भली-भाँति देख-रेख करें, उसकी सेवा-शुश्रूषा के लिए सदैव सहर्ष प्रस्तुत रहें। साम्राज्ञी के शरीर पर कुछ ऐसी उत्स्राजिकायें होती हैं जो एक प्रकार का मीठा रस उत्पादित किया करती हैं। इस रस को साम्राज्ञी की सेवा में लगे हुए कर्मकार बड़े प्रेम से चखते हैं। वह साम्राज्ञी से अधिक रस पाने की लालसा से उसे खिलाते-पिलाते भी खूब हैं और इस प्रकार वह उपेक्षा की पात्र बनने से बच जाती है। इस रस के लोभ मे वह सब साम्राज्ञी के सारे शरीर को खूब चाटते हैं, जिनसे उनकी तो मिठाई की भूख मिटती है और साम्राज्ञी का शरीर साफ़ और सुथरा हो जाता है। हाँ! कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि जब साम्राज्ञी अपने शरीर से पर्याप्त रस नहीं उत्पन्न कर पाती तो उसकी सेवा-शुश्रूषा में लगे हुए ये दास-दासियाँ उसे काटती हैं और स्थान-स्थान पर माँस नोच खाती हैं जिससे कि उसके शरीर पर जहाँ-तहाँ घाव हो जाते हैं।

ऐसी होती है इनमें राजतन्त्र तथा प्रजातन्त्र शासनों की व्यवस्था।

—ज्ञानप्रकाश त्रिवेदी

सनातन गाँव पंचायत

हमारे देश में सदा से पंचों का राज्य रहा है और उनका निष्पक्ष निर्णय सर्वोपरि माना गया है। पंचायती राज्य को इतना उत्तम और न्यायपूर्ण समझा गया कि आज भी 'पंच परमेश्वर' का मुहावरा प्रचलित है।

वैदिक काल में आर्य जनता यूनान के 'पौर जनपदों' (सिटी स्टेट्स) की भाँति छोटे-छोटे जनपदों, गोत्रों, व्रातों, संघों और राष्ट्रों में विभक्त थी। ये सब किसी न किसी रूप में जनतन्त्र थे, जिनमें बड़ों और बूढ़ों (ज्येष्ठ) की यथेष्ठ प्रतिष्ठा थी तथा उनकी सम्मति और आज्ञा अक्सर मानी जाती थी। इनके भीतर रहने वाले सभी सदस्य अपना-अपना मत देते थे और उसकी उपयुक्तता सिद्ध करने के लिए जोश के साथ अपने-अपने मत का प्रतिपादन करते थे। गण तो वैदिक काल में बहुत रहे होंगे। ऋग्वेद में 'सभा-साह' याने सभा (स+भा) को जीतने वाले की बहुत तारीफ़ें की गई हैं। सभेय शब्द आदर-वाचक है। याद रखना चाहिए कि 'सभ्य' शब्द इसी सभेय से बना है, इसलिए वैदिक काल में सभ्यता या सभेयता का सर्वत्र मान था। यह सभ्यता असल में गाँव-पंचायतों की पंची थी। पंच सभ्य कहे जाते थे; क्योंकि वह सभा में बैठकर ग्राम-सुधार या शिक्षा, दंड, गोचर भूमि, खेत, नहर आदि का प्रवन्ध करते, गाँव की भलाई के विषयों पर वाद-विवाद करते और निष्पक्ष न्याय करते थे।

इसी तरह एक शब्द 'गण्य' है। इसका अर्थ है गण में जाने या बैठने योग्य। इसका एक उच्चारण 'गणिय' भी है जो आज तक कुमाऊनी भाषा में वर्तमान है। हिन्दी में गण्यमान आदर-सूचक है। प्राचीन समय में गणराज्य था और गणपति थे। और जब गण या सभा में गणपति का स्वागत किया जाता था तब गाया जाता था :—

—"हे गण के गणपति! हम तुझे बुलाते हैं या तेरा स्वागत करते हैं। तू हमारे प्यारों का भी प्यारा है। इसलिए हमने तुझे गणपति याने प्रेसीडेंट चुना। तू हमारी निधियों का निधिपति (ख़ज़ांची) है। हम तेरा स्वागत करते हैं।" यह स्तुति स्पष्ट है। इसमें कहीं अस्पष्टता नहीं है। यह गाँव-पंचायत के अध्यक्ष चुने हुए प्यारे नेता तथा उस ख़ज़ांची की अभ्यर्थना और स्वागत है, जो सारे गण का हितकारी था। पर खेद है कि संस्कृत से और भारतीय संस्कृति से अनभिज्ञ कुछ यूरोपियनों और एक-दो भारतीयों ने भी गणपति का महान् अनर्थकारी अर्थ किया है। ग्रामीण भी गाँव का या गाँव-पंचायत का अध्यक्ष होता था।

बौद्ध काल में गाँव-पंचायत का अध्यक्ष ग्राम-भोजक कहलाता था। वैदिक काल में समिति के सदस्यों को राजा कहा जाता था। 'राजानः समितिमिव श्यानः', 'जैसे राजा समिति को जाते हैं', ऐसा ऋग्वेद में पाया जाता है। बौद्ध काल में भी देखा जाता है कि गणों के प्रधान राजा कहे जाते थे।

वैदिक काल में आपस में मिलकर रहने की प्रवृत्ति आर्यों में बहुत थी। उस समय गणों के कार्य आरम्भ करते समय जो प्रार्थना की जाती थी, वह इस बात का प्रमाण देती है। एक प्रार्थना है :—

"सूर्य और चन्द्रमा की तरह हम ऐसे पथ पर चलें जो मंगलमय हो। हमारा संग ऐसे लोगों के साथ हो जो दानी, अहिंसक तथा जानकार हों।" इससे यह मालूम होता है कि वैदिक गण-सभा के सदस्य भली-भाँति जान गये थे कि लोभी (घूसखोर और भ्रष्टाचारी) हिंसक (दूसरों को हानि पहुँचाने की भावना वाले) और अज्ञानी लोग गण को डुबोते हैं। वैदिक गाँव-पंचायतों में 'संज्ञान' या 'संजान' का बहुत प्रचार था। वैदिक आर्य अपने अनुभव से जान गये थे कि फूट गाँव-पंचायतों का सत्यानाश कर देती है। और यह परस्पर का विद्वेष लोभ से जन्मता है, जिसकी जड़ में यह प्रवृत्ति काम करती है कि मैं समाज के और सभ्यों से अधिक खाऊँ; मेरे पुत्र, कन्या, स्त्री आदि सब औरों से अधिक प्राप्त करें। यह ममता मनुष्य में स्वाभाविक है, किन्तु मनुष्यता इसी में है कि यह प्रवृत्ति देश-हित और लोक-कल्याण के लिए दबाई जाय। इसलिए वैदिक गाँव-पंचायतों की एक और प्रार्थना यह थी :—

संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम्
देवा भागं यथा पूर्वे संज्ञानाना उपासते।

"संग-संग चलो, संग में बोलो, तुम्हारे मन एक हों, तुम उस (अपनी सम्मिलित संपत्ति का) भाग, गाँव की एकता का ज्ञान ध्यान में रखते हुए, बराबर-बराबर करो, जैसा कि देवता पहले से करते आये हैं!" इस सूक्त में गाँव-पंचायतों के जीवन का मूल सूत्र है। यह संज्ञान का सूक्त एकता के ज्ञान का पंचायतों और गाँवों में प्रचार करता है। अथर्ववेद का एक सूक्त इस विषय को और भी स्पष्ट करता है और बताता है

कि उस समय भारत में (काबुल से लेकर पंजाब तक) संघवाद और गणवाद के सिद्धान्त गाँव-पंचायतों द्वारा कार्य में परिणत हो रहे थे। वह यह है—पंचायत का काम आरम्भ होने से पहले यज्ञ का जशन कराते समय पुरोहित (प्रेसीडेंट या अध्यक्ष) सारे गाँव की पंचायत को, जिसमें सब गाँव वाले उपस्थित रहते थे, उपदेश देता था—

समानी प्रपा सह वो अन्नभागाः
समाने योकत्रे सह वो युनज्मि।

"तुम्हारा प्याऊ (जल पीने का स्थान) एक हो, तुम एक साथ अन्न खाओ। तुमको मैं एक जुए में एक साथ जोड़ देता हूँ।" वैदिक गाँव पंचायतों में गाँव-का-गाँव सम्मिलित श्रम द्वारा पंचायती संपत्ति रखता था जो 'निधियों के निधिपति' गाँव या गण के गणपति के हाथ में रहती थी; इसका उपभोग सब एक साथ करते थे।

ऐसा भी लिखा है कि कुल्लू, कांगड़ा, कुमाऊँ तथा गढ़वाल में जनतन्त्र था और कोई राजा न था; बल्कि सब मनुष्य मिलकर राज्य करते थे।

बौद्ध—काल में 'संघ' की महान् महिमा था। सब बौद्ध "संघ शरणं गच्छामि" का नारा लगाते थे। पाणिनि के कुछ सूत्रों के अनुसार 'संघात' शब्द का अर्थ भीड़-भाड़ है और संघ का अर्थ गण या 'संघ रूप समूह' है। बौद्ध समय में छोटे-छोटे गाँवों में भी गण थे। कुसीनार में मल्लों का गण था, पावा में भी ये मल्ल ही सारे गाँव की सभा द्वारा राज-काज चलाते थे। ये छोटे गांव अपने निवासियों कोपंचायत के पंच मानते थे। वहाँ चुनाव की आवश्यकता

ही न थी, क्योंकि दो-अढ़ाई सौ जनसंख्या के ये गाँव, गाँव के सभी रहने वालों को राज-काज तथा आर्थिक और सामाजिक प्रबन्ध का समान भागीदार समझते थे। इनका सिद्धान्त था कि सब मनुष्य गाँव के सुख-दुःख के लिए समान रूप से ज़िम्मेदार हैं। सुख पहुँचाना प्रत्येक का धर्म है, दुःख देने का अधिकार किसी को नहीं है।

भगवान कृष्ण वृष्णि-गण के गणपति थे। एक बार अंधक वृष्णि, कुकुर और भोज गणों में फूट पड़ गई। इन चार गणों के नेता एक दूसरे को बुरा बताने लगे और गणों के भीतर भी शत्रुता फैल गई जिस से गण कमज़ोर होने लगे। कृष्ण ने नारद को यह सब हाल बताया और मेल का उपाय पूछा। उन्होंने वही ढंग मेल पैदा करने का बताया जो बापूजी बताते थे।

सच है आपस में मेल और प्रेम बढ़ाने के लिए कठोर शब्द तलवार का काम करते हैं। और उक्त गणों के भीतर एक नेता दूसरे नेता को, जनता नेताओं को और नेता जनता को जली-कटी सुनाने लगे थे। इससे फूट बढ़ रही थी। फूट बन्द करने का एक हथियार नारद ने कृष्ण को बताया। उन्होंने कहा कि "ऐसे सँकट काल में 'अनायास-शस्त्र' काम में लाना चाहिए। 'अहिंसा-शस्त्र' की भाँति यह 'अनायास शस्त्र' ऐसा उपाय है कि इसको चलाने वाले की हार राजनीति के क्षेत्र में कभी नहीं हो सकती है। हे कृष्ण! यह हथियार ऐसा ही है कि मीठी बातों से ही कलेजे के पार हो जाता है। कठोर वाणी बोलने वालों का जी मुलायम कर, गण की अधिक से

अधिक जितनी ताक़त है उतना ग़ल्ला जनता में बाँट, शत्रुओं को तथा जनता को क्षमा कर, सीधा और सच्चा व्यवहार कर, योगियों को पूज, यह अनायास शस्त्र है। जो लोग कड़वी बात कह के कुछ प्राप्त करना चाहते हैं, तू उनके हृदय को और मन को शांत कर। कभी यह न समझ कि दूसरे महात्मा नहीं हैं, सहायवान नहीं हैं। संघों का विनाश आपस की फूट में होता है। हे केशव ! तू 'संघमुख' अर्थात् सरपंच है। ऐसा उपाय कर कि तेरी सरपंची में तेरा संघ नष्ट न हो।"

गणों या गांव-पंचायतों के बारे में लिखा है कि लोभ इनकी जड़ खोद देता है। यह बात पंचायतों और स्वयं राष्ट्रों के विषय में सत्य है। यदि गाँव-पंचायतों में यह लोभ घुसा तो पंचायतें हमारी फूट गाँव-गाँव पहुंचा देंगी इसे रोकने का हमें विशेष ध्यान रखना चाहिए।

गाँव-पंचायतें भारत में आदि काल से चली आ रही हैं। इनके कारण भारत के साम्राज्य चले। किसी भी राजा ने यह कुचेष्टा नहीं की कि इनकी स्वाधीनता छेड़ी जाय। कभी किसी ने इन्हें अपने वश में किया तो इनके भीतरी इन्तज़ाम में हाथ नहीं डाला, इन्हें पूरी स्वतन्त्रता दी। यह संस्थाएँ सत्य, अहिंसा, निष्पक्षता, निर्लोभ-भावना आदि के कारण भारत की संस्कृति तथा सभ्यता को आगे बढ़ा सकी।

गणों की अटूट शक्ति का कारण उनकी समानता थी। गणों या गाँव-पंचायतों में सब समान समझे जाते थे। जनतन्त्र के सब निवासी, चाहे वह पंचायती गाँव के रूप में हों या जनपद हों, भाई-भाई समझे जाते थे। इस समानता के विषय में वेद में मस्त-गण के बारे में लिखा है—'अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते

ते भ्रातरो वावृधुः सौभगाय"। अर्थात् 'ये सब लोग भाई-भाई हैं, साथ-साथ गण के कल्याण के लिए बढ़ते हैं और इनमें न कोई ज्येष्ठ है और न कोई कनिष्ठ; यानी छोटी-बड़ी उम्र का भी भेद-भाव नहीं है।" भारत में ज्ञान का सदा महान आदर 'रहा है। जहाँ ज्ञान का प्रश्न आया वहाँ कभी उम्र का ख़याल नहीं किया गया। इसके अलावा बालक भी हो तो ज्ञान-वृद्ध कह कर उसका सम्मान भी करते थे और उसकी लोक-कल्याणकारी बातें गाँठ बाँध लेते थे। इस पर बहुत पुरानी एक कथा है। अंगिरस ऋषि की बुद्धि तीखी होने के कारण उसे छुटपन में ही बहुत ज्ञान प्राप्त हो गया था। उसके नातेदार, बड़े-बूढ़े उसके पास आकर पढ़ते थे। एक दिन उसने पाठ के अन्त में कहा—'तुम्हारा बेटा यह कहता है, इसे गाँठ बाँध लो।" यह सुनकर बूढ़े बिगड़ गये। देवताओं के पास इस-बेअदबी की नालिश हुई। देवताओं ने सब बात सुनकर फ़ैसला किया—"अंगिरस ने तुम्हें जो कुछ कहा है उचित है।" इसका कारण यह बताया—

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः॥

"सिर के बाल पकने से कोई बूढ़ा नहीं होता। देवता उसे बूढ़ा कहते हैं जो भले ही जवान हो, पर ज्ञानी और अध्ययन-शील हो।" इससे पता चलता है कि आर्य सभ्यता ने ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया है।

यदि गाँव-पंचायतें इन सिद्धान्तों पर चलेंगी तो देश की जनता (किसान-मज़दूर प्रजा) का महान हित कर पायेंगी।

—हेमचन्द्र जोशी

अधिकार का रक्षक

[पात्र—१—मिस्टर सेठ—एक दैनिक पत्र के मालिक तथा प्रान्तीय असेम्बली के उम्मीदवार।

२—रामलखन—उनका नौकर।

३—भगवती—रसोइया।

४—सम्पादक; ५—श्रीमती सेठ; ६—नन्हा बलराम इत्यादि।

समय—आठ बजे सुबह।

स्थान—मि० सेठ के मकान का ड्राइङ्ग रूम]

(टेलीफ़ोन की घण्टी बजती है।)

(मि० सेठ—समाचार-पत्र ट्रे में फेंक कर चोंगा उठाते हैं।)

"हैलो!" (ज़रा और ऊँचा) "हैलो!"

"हाँ, हाँ, मैं ही बोल रहा हूँ। घनश्यामदास। आप···अच्छा-अच्छा, रलाराम जी मन्त्री हरिजन सभा हैं! नमस्ते! (ज़रा हँसते हैं) "सुनाइए महाराज, कल के जलसे की कैसी रही?"

"अच्छा! आपके भाषण के बाद हवा पलट गई? सब हरिजन मेरे पक्ष में प्रचार करने को तैयार हो गये?"

"ठीक-ठीक! आपने खूब कहा, खूब कहा, आपने! वास्तव में मैंने अपना जीवन पीड़ितों, दुःखियों और गिरे हुओं को उठाने में लगा दिया है। बच्चों को ही लीजिए, हमारे घरों में उनकी दशा कैसी शोचनीय है? उन के लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा की पद्धति कितनी पुरानी और ऊल-जलूल और दक़ियानूसी है? उनके स्वास्थ्य की ओर कितना कम ध्यान दिया जाता है और अनुचित दबाव में रखकर

उन्हें कितना डरपोक और भीरू बनाया जाता है ? उन्हें···

[नन्हा बलराम भीतर आता है]

बलराम—बाबू जी, बाबू जी हमें मेले···

मि० सेठ—(टेलीफ़ोन पर, आवाज़ ज़रा ऊँची) हाँ, हाँ, मैं कह रहा हूँ, कि मैंने बच्चों के लिए, उनकी शिक्षा-दीक्षा के लिए, उनके स्वास्थ्य······

बलराम—(और समीप आकर कुर्ते को छोर पकड़ कर) **बाबू जी···**

मि० सेठ—(चोंगे से मुँह हटा कर, क्रोध से) ठहर, ठहर कमबख्त ! देखता नहीं, मैं टेलीफ़ोन पर बात···

(बच्चा रोने लगता है)

मि० सेठ—(टेलीफ़ोन पर) मैं आपसे अभी एक सैकेण्ड में बात करता हूँ, इधर जरा शोर हो रहा है। (चोंगा खट से मेज़ पर रख देते हैं।) (बच्चे से) "चल, निकल यहाँ से। कमबख्त !" (कान पकड़ कर उसे दरवाज़े की तरफ़ घसीटता है, बच्चा रोता हुआ बैठ जाता है।)

मि० सेठ—(नौकर को आवाज़ देते हैं) रामलखन, ओ रामलखन !

रामलखन—(बाहर से) आये रहे बाबू जी। (भागता हुआ भीतर आता है। साँस फूली हुई है) "जी बाबू जी !"

(मि० सेठ नौकर को पीटते हैं।)

मि० सेठ—हरामखोर ! पाजी ! क्यों इसे इधर आने दिया ? क्यों इधर आने दिया इसे ?

रामलखन—अब बाबू काहे मारत हो ? लिए तो जात रहे।

(लड़के का बाज़ू थाम कर उसे बाहर ले जाता है।)

मि० सेठ—और सुनो, किसी को इधर मत आने देना। कोई बाहर से आये तो पहले आकर खबर दे देना। समझे न! (नौकर और बच्चे को बाहर निकाल कर ज़ोर से किवाड़ लगा देते हैं।) "हूँ! अहमक़: मुफ़्त में इतना समय नष्ट कर दिया।" (चोंगा उठाते हैं)

(ज़रा कर्कश स्वर में) "हैलो!... (आवाज़ में ज़रा नर्मी लाकर) अच्छा, अच्छा, आप अभी हैं! (स्वर को कुछ और संयत करके) तो मैं आप से कह रहा था कि मैं—मैं ही ऐसा व्यक्ति हूँ जिसने उस अत्याचार के विरुद्ध आंदोलन किया जो घरों और स्कूलों में छोटे-छोटे बच्चों पर तोड़ा जाता है और फिर वह मैं ही हूँ, जिसने पाठशालाओं में शारीरिक दंड को बंद कर देने पर ज़ोर दिया, घरों में काम करने वाले भोले-भोले निरीह नौकरों के लिए मैंने नौकर-यूनियन स्थापित की। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण होते हुए भी मैंने हरिजनों का पक्ष लिया। यदि परमात्मा ने चाहा और यदि मैं धारा-सभा में गया तो...

(दरवाज़ा खुलता है)

रामलखन—(दरवाज़े से झाँककर) बाबू जी, जमादारिन...

मि० सेठ—(टेलीफ़ोन पर बात ज़ारी रखते हुए) मैं वहाँ हरिजनों की सेवा करूँगा। आप अपनी हरिजन-सभा में इस बात की घोषणा कर दें।

रामलखन--(ज़रा अन्दर आकर) बाबू जी...

मि० सेठ—(क्रोध से) ठहर पाजी। (टेलीफ़ोन से) नहीं, नहीं मैं नौकर से कह रहा था...(हँसते हैं) हाँ, तो आप घोषित कर दें कि मैं असेम्बली में हरिजनों के पक्ष की हिमायत करूँगा और वे मेरे हक़ में पैगंडा करें।...हैं...क्या ?

अच्छा-अच्छा नमस्कार !

(टेलीफ़ोन का चोंगा रख देते हैं)

भंगन—(दरवाज़े के बाहर से विनीत स्वर में) महाराज दूधों नहाओ, पूतों फलो । दो महीने हो गये हैं ।

(भगवती प्रवेश करता है)

भगवती—जयराम जी की, बाबू जी ।

मि० सेठ—तुम इस समय क्यों आये हो भगवती ?

भगवती—बाबू जी, हमारा हिसाब कर दो !

मि० सेठ—(बेपरवाही से) तुम देखते हो आजकल चुनाव के कारण कुछ नहीं सूझता । कुछ दिन ठहर जाओ ।

भगवती—बाबू जी, अब एक घड़ी भी नहीं ठहर सकते । जब आपकी नौकरी करते हैं, तो खाने के लिए और कहाँ माँगने जायँ ?

मि० सेठ—अभी चार दिन हुए, दो रुपया ले गये थे (जेब से रुपया निकाल कर फ़र्श पर फैंकते हुए) अभी यह एक रुपया ले जाओ ।

भगवती—नहीं बाबू जी, एक-एक दो-दो से कितने दिन काम चलेगा ? हमारे भी आखिर बीवी-बच्चे हैं, उन्हें भी खाने-ओढ़ने को चाहिए । हम तो आज ही सब लेकर जायँगे ।

मि० सेठ—(उठकर क्रोध से) आज ही लोगे ? अभी लोगे ? जा, नहीं देते । पाजी, हरामखोर ! आज तक सब्जी में, दाल में, सौदा-सुल्फ़ में पैसे खाता रहा, हमने कभी कुछ न कहा और अब यों अकड़ता है । जा, निकल जा ! चोरी के अपराध में छः महीने के लिए जेल न भिजवा दूँ तो नाम नहीं ।

भगवती—सच है बाबू जी, ग़रीब लाख ईमानदार हो तो भी चरो

है, डाकू है। और अमीर यदि आँखों में धूल झोंक कर हजारों पर हाथ साफ़ कर जाय ; चन्दे के नाम पर सहस्रों ··· ।

मि० सेठ—(क्रोध से पागल होकर) तू जायगा या नहीं ? (नौकर को आवाज़ देकर) रामलखन, इसको बाहर निकाल दो। (स्वयं ही भगवती को बाहर निकाल कर दरवाज़ा ज़ोर से बन्द करते हैं) मूर्ख, नामाक़ूल ! (फिर उठकर कमरे में इधर-उधर घूमते हैं, फिर सीटी बजाते हैं और घूमते हैं, फिर नौकर को आवाज़ देते हैं—) रामलखन ! अख़बार अभी आया कि नहीं। (टेलीफ़ोन की घण्टी बजती है। मि० सेठ जल्दी से चोंगा उठाते हैं) हैलो कौन साहब ? मन्त्री मज़दूर-यूनियन ! अच्छा-अच्छा, नमस्कार, सुनाइये, आपके मज़दूर क्षेत्र का क्या हाल है ? क्या ?··· सब मेरे हक़ में वोट देने को तैयार हैं। मैं कृतज्ञ हूँ। आपका अत्यन्त आभारी हूँ।

इस ओर से आप बिल्कुल निश्‍चित रहें। मैं उन आदमियों में से नहीं जो कहते कुछ हैं और करते कुछ। आपने मेरी चुनाव-सम्बन्धी घोषणा नहीं पढ़ी ? मैं असेम्बली में जाते ही मज़दूरों की व्यवस्था सुधारने का प्रयास करूँगा। उनकी स्वास्थ्य-रक्षा, सुख-आराम, पठन-पाठन और दूसरी माँगों के सम्बन्ध में विशेष बिल धारा-सभा में पेश करूँगा।

क्या ?···हाँ-हाँ, इस ओर से भी मैं बेपरवाह नहीं। सप्ताह में ४२ घण्टे काम की माँग कोई अनुचित नहीं। आख़िर मनुष्य और पशु में कुछ तो अन्तर होना ही चाहिए। तेरह घण्टे की ड्यूटी।

(धीरे-धीरे दरवाज़ा खुलता है और एक महोदय भीतर आते हैं—

पतले-दुबले से ; आँखों पर ऐनक चढ़ी ; गाल पिचके—धीरे से दरवाज़ा वन्द करके खड़े रहते हैं ।)

मि० सेठ—(सम्पादक से) आप बैठिए । (टेलीफ़ोन पर) ये हमारे सम्पादक महोदय आये हैं । अच्छा, तो फिर संध्या को आपकी सभा हो रही है । मैं आने की कोशिश करूँगा । और कोई बात ? नमस्कार !

(चोंगा रख देते हैं)

(सम्पादक से—बैठ जाइए, आप खड़े क्यों हैं ?)

सम्पादक—नहीं कोई बात नहीं । (कौच पर बैठते हैं । रामलखन अख़बार लिये आता है ।)

रामलखन—बड़े काका तो देत नहीं रहन ; मुदा जबरदस्ती लेई आयें ।

मि० सेठ—(समाचार-पत्र लेकर) जा, जा, बाहर बैठ ।

(समाचार देखने लगते हैं ।)

सम्पादक—मैं···मैं···

मि० सेठ—हाँ, हाँ ; पहले आप ही फ़र्माइये ?

सम्पादक—(होठों पर ज़बान फेरते हुए) बात यह है कि मेरी··· मेरा मतलब है···कि मेरी आँखें बहुत खराब हो रही हैं ।

मि० सेठ—आपको डाक्टर से परामर्श करना चाहिए था ; कहिए, डा० खन्ना के नाम रुक्क़ा लिख दूँ ?

सम्पादक—(थूक निगल कर) बात यह है कि मेरी आँखें बोझ नहीं सहन कर सकतीं । मैंने पहले भी निवेदन किया था कि यदि एक और आदमी का प्रबन्ध कर दें तो अच्छा हो ।

मि० सेठ—मैं आपसे पहले भी कह चुका हूँ, यह असम्भव है, बिल्कुल असम्भव ! अखबार कोई बहुत लाभ पर नहीं चल रहा है। अगले महीने पाँच रुपये मैं आपके बढ़ा दूँगा ।

सम्पादक—मेरा स्वास्थ्य आज्ञा नहीं देता। आखिर आँखें कब तक बारह-बारह, तेरह-तेरह घण्टे काम कर सकती हैं ?

मि० सेठ—वैसे आप काम छोड़ना चाहें तो शौक़ से छोड़ दें। एक नहीं दस आदमी मिल जायेंगे ; लेकिन··

(सम्पादक मुँह फुलाता है)

मि० सेठ—लेकिन आप घबरायें नहीं, यदि आप को कुछ दिन ज़्यादा काम ही करना पड़ा तो क्या आफ़त आ गई ! यह महीना आप किसी न किसी तरह निकालिए, चुनाव होते ही फिर कोई प्रबन्ध कर दूँगा।

सम्पादक—(दीर्घ निःश्वास छोड़कर) बहुत अच्छा।

मि० सेठ समाचार-पत्र पढ़ना शुरू कर देते हैं। दरवाज़ा ज़ोर से खुलता है और बलराम का बाज़ू थामे श्रीमती सेठ बगूले की तरह प्रवेश करती हैं।)

श्रीमती सेठ—मैं कहती हूँ। आप बच्चों से कभी प्यार करना भी सीखेंगे ? जब देखो, घूरते, झिड़कते, डाँटते, नजर आते हो। भला आज इस बेचारे से क्या अपराध हुआ जो पीटने लगे ? देखो तो अभी तक कान कितना लाल है ?

मि० सेठ—(अख़बार पर दृष्टि जमाए हुए) तुम्हें कभी बात करने का तरीक़ा भी आयेगा ? जाओ इस समय मेरे पास समय नहीं है।

श्रीमती—आपके पास हमारी बात सुनने के लिए कभी वक्त भी होता है ? मारने और पीटने के लिए जाने कहाँ से समय निकल आता है !

मि० सेठ—(क्रोध से अख़बार को तख़्तपोश पर पटक कर) क्या बके जा रही हो ? बीस बार कहा है इन सबको संभाल रखा कर।

आ जाते हैं सुबह-सुबह दिमाग़ चाटने के लिए।

(श्रीमती सेठ बच्चे को दो थप्पड़ लगाती है)

श्रीमती—तुझे कितनी बार कहा है, इस कमरे में न आया कर ! ये बाप नहीं दुश्मन हैं। लोगों के बच्चों से प्रेम करेंगे, उनके स्वास्थ्य के लिए बिल पास कराएँगे—

मि० सेठ—(क्रोध से पागल होकर, पत्नी को धकेलते हुए) मैं कहता हूँ, इसे पीटना है तो उधर जाकर पीटो—घर के अन्दर जाकर बैठा करो···।

श्रीमती—(तुनक कर) आप कभी घर के अन्दर आये भी···।

मि० सेठ—तुम्हारी नित्य की बक-झक से तंग आकर मैं इधर एकान्त में आ गया हूँ। अब यहाँ आकर भी तुमने चीख़ना-चिल्लाना शुरू कर दिया है ! क्या चाहती हो, यहाँ से भी चला जाऊँ ?

श्रीमती—(रोते हुए) आप क्यों चले जायें ? हम ही चले जायेंगे। (तेजी से बच्चे को लेकर चली जाती है। दरवाज़ा ज़ोर से बन्द होता है।)

मि० सेठ—बेवक़ूफ़ ! (अख़बार पढ़ने लगते हैं। टेलीफ़ोन की घण्टी बजती है) हैलो···हैलो···कौन ? श्रीमती सरला देवी ? हाँ, सुनाइए, आपके महिला-समाज ने क्या पास कर रखा है ? मैं भी आशा रखूँ ?···

मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ, अत्यन्त आभारी ! आप निश्चय रखें, मैं जी-जान से स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा करूँगा। महिलाओं के अधिकारों का मुझ से बेहतर रक्षक आपको वर्तमान उम्मीदवारों में कहीं नज़र न आयेगा।···

(पर्दा गिरता है)

—उपेन्द्रनाथ अश्क

विज्ञान की करामात

(१)

आकाश अनन्त है और अनन्त होने में ही उसका रहस्य है। मनुष्य ने उसमें पूर्व से सूर्य उदय होता देखा। रात में उसे छोटे बड़े तारों से जगमगाता पाया। चन्द्रमा की शीतल चाँदनी का सुख देने वाला स्पर्श उसे इसी आकाश में से हुआ।

बादल उमड़े—गरजे और बरसे। न जाने कहाँ से आकाश में कितना फ़ासला तय करके वे यहाँ आये? बिजली भी तो चमकी इन्द्र-धनुष सतरंगी घटा से छिटका। वहीं ऊपर से कभी पानी की बूँदें गिरी तो ओले भी टपके। वायु की हल्की लहर, या आँधी, ये सभी आकाश में चलती दीखीं!

और ओहो! ये चिड़ियाँ पर फैला कर चहचहाती हुई कैसी इसी आकाश में कभी उड़ती, कभी तैरती-फिरती हैं। यह ज़रा-सी पिद्दी, यह कबूतर, यह बाज़ यहाँ तक कि यह मोर भी सभी तो कभी-कभी आकाश की सैर कर लेते हैं! ये चीलें कितनी ऊँची उड़ गई हैं! मनुष्य का मन इनसे भी ऊँचा उड़ता है। वह तरैयों तक पहुँच कर उनका भेद जानना चाहता है। वह अपने बचपन के चन्दा मामा की टुकरिया से बात करना चाहता है। वह बादलों पर बैठ कर बिजली का कोड़ा बनाएगा; इन्द्र-धनुष के रंग में अपने शरीर और वस्त्रों को रंगेगा। वह आकाश में, पर लगाकर इधर से उधर खुल कर उड़ेगा। पर बेचारा आदमी करेगा क्या? विधाता ने पंख नहीं

दिये, आँखों की दृष्टि तीव्र नहीं बनाई। हतबुद्धि, वह क्या यों बैठा ललचाता ही रहेगा? नहीं, वह हतबुद्धि नहीं, उसने 'विज्ञान' सिद्ध किया और इस सिद्धि से अपनी आकांक्षाओं से भी अधिक प्राप्त कर लिया।

विज्ञान से उसने बैलून बनाये। इन्हें हम 'गुब्बारे' कहते हैं। विज्ञान के द्वारा जब वह मौसम की खोज में लगा तो उसने जाना कि पृथ्वी के ठीक-ठीक मौसम का ज्ञान बिना आकाश की परीक्षा किये नहीं हो सकता। आकाश की गर्मी-सर्दी का पता रहने से पृथ्वी की बहुत-सी बातों के सम्बन्ध में उपयोगी वैज्ञानिक कथन दिये जा सकते हैं।

× × ×

विज्ञान से उसने हवाई जहाज़ का निर्माण किया।

बैलून से उड़ने में, और बहुत ऊँचाई तक भी उड़ जाने में आदमी को जो आनन्द मिला, उससे वह संतुष्ट नही हो सका। प्रकृति के इशारों पर नाचने वाला गेंद-सा गुब्बारा बिल्कुल आदमी के शासन में नहीं था। वह उसमें बैठकर चिड़ियों के उड़ने का आनन्द नहीं उठा सकता था। वह ऊँचे-ऊँचे आकाश में उड़कर, आकाश के उस रहस्य को जानने की सुविधा पा सका था, उसके वैज्ञानिक मस्तिष्क को लाभ था। पर उससे इच्छानुसार उड़ने-फिरने की उत्कण्ठा शान्त नहीं हुई। उसी ने हवाई जहाज़ को जन्म दिया।

बैलून हवा से हल्का होने के कारण ऊपर उड़ता चला जाता है। उसके ऊपर उठने के लिए हवा का होना, वातावरण का होना आवश्यक है। हवाई जहाज़ हवा की ताकत से ऊपर उठता है। उसका तो कम हवा में भी चलना कठिन है। जहाँ हवा बिल्कुल न हो, वहाँ एकदम असम्भव। तो फिर ये जहाँ तक हमारा वातावरण है, वहीं तक जा सकते हैं। वातावरण के ऊपर का पच्चीस मील जो भाग

है उसमें भी पूरी ऊँचाई तक जाना मुश्किल है। फिर उससे आगे जहाँ वातावरण नहीं—केवल शून्य है, वहाँ कौन जायगा ? विज्ञान का उत्तर है—रॉकेट ! निश्चय ही विज्ञान जादू है।

रॉकेट की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान लगा हुआ है। उनकी प्रबल उत्कण्ठा है, सितारों की यात्रा करने की। बड़े-बड़े रॉकेट बनाए जा रहे हैं। असम्भव को सम्भव करने का सरगर्मी से उद्योग हो रहा है और वैज्ञानिक समझता है कि वह यह करामात शीघ्र ही कर दिखायेगा।

(२)

पैदा होते समय से ही मनुष्य भूमि पर चलता-फिरता रहा है। उसने पहले अपने पैरों से ही काम किया। फिर हाथी, घोड़े, गधे, बैलों पर सवारी गाँठी, और जरूरत पड़ने पर उसने गाड़ियां बनाईं। उनमें बैल जोते, भैंसे जोते, या घोड़े जोते। ये सब चूँ-चूँ, चर-चर करते धीरे-धीरे चलते थे। थोड़ा और तेज़ चलने के लिए इक्के तैयार किये गये, कुछ सुखद ताँगे बनाये गये। कहीं-कहीं रिक्शा भी ! हर साल में आदमी इस कोशिश में रहा कि तेज़ चलने वाली और सुख पहुँचाने वाली सवारियाँ बनें।

विज्ञान की दृष्टि भी इधर पड़ी। विज्ञान कभी कोई मामूली परिवर्तन नहीं करता, वह तो एकदम महान परिवर्तन की बात सोचता है। और वह जब सोचना शुरू करता है तब मामूली-सी रोजमर्रा की किसी बात से ही शुरू करता है। देखिये विज्ञान या उसका अवतार वैज्ञानिक, रसोई घर में चूल्हे के पास बैठा ताप रहा है। थोड़ी सर्दी पड़ रही है। वह माँ की गोद की गर्मी

पा नहीं सकता। इसलिए बैठा हुआ है चूल्हे के पास। उस पर एक पतीली में पानी औट रहा है। पानी को ढकने के लिये एक ढक्कन पतीली पर रखा है। खन-खन छन-छन की ध्वनि उस पतीली में से आ रही है। वैज्ञानिक की माँ तो उससे यही मतलब निकाल रही है कि पानी खौलने लगा है; अब अधिक क्यों जलाया जाय ? पर वह जो वैज्ञानिक बैठा है, उसका सिर घूम रहा है। पतीली का ढक्कन बार-बार फुदक-फुदक कर क्यों गिर रहा है ? कौन उसे उछाल रहा है ? उस ढक्कन से अधिक ताकत की चीज़ हो तो उसे उठा सकती है। ढक्कन को उठाने-गिराने वाली चीज़ भाप है, इसमें तो कोई सन्देह नहीं। पर भाप क्या एक ताकत है ; इस ताकत को क्या बढ़ाया नहीं जा सकता ? और किसी काम में लाया नहीं जा सकता ? देखना चाहिये। वैज्ञानिक उठ पड़ा और काम में लग गया। उस चूल्हे की पतीली ने उसको जो ज्ञान दिया वह थोड़े ही दिनों में स्टीम इन्जिन (भाप का इन्जिन) बना लाया। भाप का इन्जिन बना और नया युग आया। लोग समझ गये कि आग और पानी से एक ताकत पैदा की जा सकती है जो चीज़ों को चला-फिरा सकती है; उस ताकत को अनेकों जगह काम में लाया जा सकता है।

एक सोचने लगा इससे चरखी चलाएँ, दूसरा सोचता गाड़ियों में लगाएँ। दोनों अपने-अपने काम में लग गये। दूसरे ने भाप से चलने वाली गाड़ी तैयार कर दी।

यह रेलगाड़ी कहलाई। और रेलगाड़ी ने चमत्कार कर दिखलाया।

विज्ञान की इस करामात ने मनुष्य को ज़मीन पर, ज़मीन के नीचे, पहाड़ों को चीरते हुए, पानी पर चल कर, बहुत

सुविधा दी है। पर रेलें तो बँधी हुई पटरियों पर ही चल सकती हैं। मामूली पक्की सड़कों पर तो उनकी गम नहीं। वहाँ चलने के लिए भी विज्ञान की कोई कारीगरी होनी ही चाहिए वह कारीगरी भी आज सर्वविदित है। उससे मनुष्य को कितनी सुविधा नहीं हुई है? और वह है मोटरकार!

सहारा का भयानक रेगिस्तान भी, जिसमें जाते आदमी की रूह काँपती थी, जिसकी जलती धूल आदमी के लिये मृत्यु-सन्देश से कम नहीं, आज मोटरकर से पार किया जा सकता है। यहाँ चलने वाली कारों में ऐसा प्रबन्ध रहता है कि धूल का एक भी कण अन्दर न जा सके।

मोटर से पहाड़ों पर चढ़ाई भी सम्भव हो गई है। इनसे बड़े-बड़े खेतों में हल चलाये जाते हैं, खेत काटे जाते हैं।

कन्दराओं के द्वारा—सुरंगों के द्वारा—मनुष्य ने पृथ्वी के भीतर अपने लिए रास्ते बनाए हैं और रहने के स्थान भी बनाए हैं। इन सब कामों में उसके विज्ञान और बुद्धि-कौशल का जौहर स्पष्ट प्रकट होता है। पर ऐसा भी किसी ने सोचा था पहले?

आज का वैज्ञानिक जहाँ भी शक्ति का स्रोत पाता है, वहीं वह उसका उपयोग करने की विधि सोचने लग जाता है। कई ज्वालामुखियों का कहीं-कहीं व्यापारिक सुविधा के लिए उपयोग किया गया है। इटली के लारडेरेल्लो की व्यापारिक मशीनों को चलाने के लिये एक ज्वालामुखी से ही भाप पहुँचाई जाती थी।

(३)

वरुण-लोक तो भू-लोक और आकाश-लोक सभी से भंयकर है। पानी का परदा अनेकों शत्रुओं को छिपाये रहता है। कहीं

कुहरा मार्ग को अन्धकार से भर जाता है। ज्वार-भाटा उसको अत्यन्त चंचल करता रहता है। उसमें भीषण तूफान मज़बूत से मजबूत वस्तु को चकनाचूर कर सकते हैं। तैरते हुए बर्फ़ के पहाड़ों का देखकर ही प्राण जम जाते हैं। गरम पानी की धाराओं से नाक में दम आ जाता है। इतना बड़ा पानी का भंडार, फिर भी पानी की एक बूँद नहीं।

परन्तु आज विज्ञान ने समुद्र की छाती पर मूँग दल दी है। वह उसकी पैदा की हुई दुर्दमनीय बाधाओं को रौंदता हुआ फक-फक छक-छक करता जहाज़ चलाता है। वह उसकी रहस्यपूर्ण गहराई की थाह लेने दूर–दूर तक उसकी अन्धकोठरियों में घुसता फिरता है।

—सत्येन्द्र

['विज्ञान की करामात' से]

हीरा और कोयला

हीरा—मेरे पास तू कैसे ?

कोयला—क्यों, तेरा और मेरा जन्म का साथ है !

हीरा—"जन्म का साथ है ?" चल हट, दूर हो यहाँ से।

कोयला—क्या तू मेरी बात झूठ मानता है ? अरे, हम सगे भाई हैं !

हीरा—क्या कहना है, चोरी और सीनाज़ोरी ! अभी तक जन्म का साथी बनता था, अब भाई बनने लगा। मैं गोरा-चिट्टा, तू काला-कलूटा। भला कौन कहेगा कि तू मेरा भाई !

कोयला—अरे, मैं तेरा सगा ही नहीं, सगा बड़ा भाई हूँ। एक पेट से पहले मेरा जन्म होता है, तब तेरा।

हीरा—तभी न हम दोनों एक से हैं !

कोयला—यह तो ईश्वरी देन है। क्या देव और दानव भाई नहीं ?

हीरा—सोलहों आने सच ! लेकिन दानव तू ही हुआ, क्योंकि त मेरा बड़ा बनता है।

कोयला—कौन दानव है और कौन देव, यह तो कर्म से विदित होगा। अपने मुँह से कहने की क्या आवश्यकता है ? फिर देवता के अनुयायी ही असुरों की इतनी निन्दा करते आए हैं। यदि देखा जाय तो बेचारे असुर सदा ही देवताओं से छले गए हैं।

हीरा—अच्छा रहने दे अपने पास अपनी दार्शनिकता ! आ, हम अपनी-अपनी करनी तो देख लें, कि तू मेरा बड़ा भाई होने योग्य है कि नहीं ।

कोयला—बहुत ठीक, बहुत ठीक, तुझे ही अपनी बड़ाई का बड़ा घमंड है, तू ही अपने गुन कह चल ।

हीरा—बनता तो है मेरा सहोदर, पर तुझे मेरे गुण तक विदित नहीं । न सही, पर क्या तेरी आँखें भी फूट गई हैं ? पहले तो मेरा रूप ही देख । यदि मुझ में और गुण न भी हों तो इतना ही मेरा बड़ाई के लिए बहुत है—मैं जहाँ रहता हूँ सूर्य की तरह चमकता हूँ । रंग-बिरंगी किरणें मुझसे निकला करती हैं । देखने वालों की आँखें खुल जाती हैं, तबीयत हरी हो जाती है ।

कोयला—क्या कहना है ! तू तो एक कंकड़ जैसा खान के बाहर आता है, वह तो हीरा-तराश तुझे यह कृत्रिम रूप देता है । तेरा अपना प्रकाश कहाँ ? तू तो समस्त वर्णों और प्रकाशों से शून्य है । तुझ में जैसी छाया और आभा पड़ी, वैसा ही बन जाता है । गंगा गए, गंगाराम, जमुना गए जमुनादास । यदि तू कहीं अंधेरा में पड़ा रहे तो लोगों की ठोकरें खाये ।

हीरा—ज़रा हीं में गर्म हो गया । पूरी बात तो सुन लेता । सुन—मैं राज-राजेश्वरो के सिर पर बैठता हूँ । देवताओं का मुकुट सुशोभित करता हूँ, सुन्दरियों का आभूषण बनता हूँ ।

कोयला—हा, तू अपने कारण सम्राटों के सिर काटता है । बड़े-बड़े राज्य तहस-नहस करा डालता है । मनुष्य को इस धोखे में डालता है कि तुझे देव-मुकुट में लगाकर वह देवता को अपने वश कर सकता है । तू सुन्दरियों की सहज रमणीयता पर भी कृत्रिमता से पानी फेरता है ।

हीरा—मैं बड़े-बड़े राजकोषों में कितनी रक्षा से रखा जाता हूँ ।

मेरे लिए पहरा-चौकी लगती है। तेरे जैसा गलियों में मारा नहीं फिरता। बड़ी-बड़ी निधियों से मेरा विनिमय होता है। मैं टके सेर नहीं बिकता !

कोयला—क्या खूब ! नित्य वन्दी बन कर, सौ-सौ तालों में बन्द होकर, सोने की काँटेदार बेड़ियों में जकड़ा जाकर तू अपने को बड़ा समझे तो समझ। तेरी बुद्धि की वलिहारी ! मैं तो स्वतन्त्रतापूर्वक दर-दर घूमना ही जीवन की धन्यता समझता हूँ, और तेरा मूल्य, तुझे याद है कि मैं बता दूँ ? तेरा सच्चा मोल पंजाब-केसरी रणजीतसिंह ने आँका था—पाँच जूतियाँ। सुना तूने ?

हीरा—रहने दे छोटे मुँह बड़ी बात ! तू सदा जलने वाला ! तू दूसरे का उत्कर्ष कब देख सकता है ?

कोयला—हाँ, मैं जलता हूँ, किन्तु दूसरों के लिए—मैं अपने कारण दूसरों को तो नहीं जलाता। मैं जलकर ग़रीबों की भी ज़रूरतें पूरी करता हूँ—लोगों क़ो विभूति देता हूँ।

हीरा—हाँ, मेरे ही विनिमय के लिए तू उन्हे धनिक करता है।

कोयला—क्योंकि मैं तो तुझे छोटा भाई समझ कर तेरी प्रतिष्ठा ही चाहता हूँ। पर तू तो ठहरा वज्र ! तुझे इसका ध्यान कहाँ ?

हीरा—रहने दे अपनी उदारता। मैं इन बातों में आकर अपना मार्ग नहीं छाड़ने का।

कोयला—मैं तुझे यही तो जताना चाहता हूँ—तेरे दिन अब पूरे हो चले, संसार शीघ्र ही वह दिन देखने वाला है जब तेरी पूछ न रह जायगी। वह शीघ्र ही कृत्रिम आभूषणों के बदले सच्चे आभूषण अपनावेगा। वह ग़रीबी-अमीरी का ऊबड़-

खावड़ और टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग छोड़ कर, एक सरल सीधे मार्ग से चलने वाला है।

हीरा—देखना है कि मनुष्यता कब सच्चे आभूषण अपनाती है। देखना है कि लोक-यात्रा का वह सीधा मार्ग कब बनता है। यदि वैसा सीधा मार्ग बन भी गया तो उसके सीधेपन के कारण उसकी लम्बाई देखकर ही मानवता हार बैठेगी। जो हो—

कोयला—नहीं, वह सीधापन उसका उत्साह दूना कर देगा, क्योंकि यात्रा का निर्दिष्ट स्थान उसे सामने ही दीख पड़ने लगेगा।

हीरा—जब वह समय आवेगा तब देखा जायगा। मैं बीच ही में अपना पदत्याग क्यों करूँ? क्या सहज ही मैंने उसे पाया है? तब तक के लिए तुझे इस बिना माँगी सलाह के लिए हृदय से धन्यवाद!

कोयला—अच्छा मेरे अनुज! मैं जी से तुझे आशीर्वाद देता हूँ कि ईश्वर तुझे सुबुद्धि दे।

हीरा—आह! क्या दैव-गति ऐसी ही है कि मैं तेरा अनुज होऊँ और तू—कोयला—मेरा अग्रज?

कोयला—हाँ, यह एक घटना है जिसे हम मिटा नहीं सकते।

हीरा—तो क्या मनुष्य के पूर्वज बन्दर नहीं?

कोयला—यह तो तेरे जैसे पारदर्शी ही जानें। मैं अन्ध-हृदय गूढ़ विषयों को क्या समझ सकूँ?

हीरा—चाहे जैसे भी हो, तूने अपने हृदय का कालापन तो स्वीकार किया। तेरी इस हार के आगे मैं अपना सिर झुकाता हूँ।

कोयला—और मैं भी अपने उसी आन्तरिक अन्धकार से जो आलोक का कारण है तुझे फिर असीसता हूँ कि ईश्वर तुझे सुबुद्धि दे।

—राय कृष्णदास

['संलाप' से]

जल की आपबीती

मेरा नाम संस्कृत में जल, हिन्दी में पानी, फ़ारसी में आब और अंग्रेज़ी में वाटर है। मेरी माता का नाम हाइड्रोजन और पिता का नाम ऑक्सीजन है। ईश्वर ने मुझे अधिक प्यारा समझ संसार में उपकार करने को भेजा है। यदि मैं न होऊँ तो वनस्पति, प्राणी और अनेक पदार्थों का पता न लगे।

ईश्वर ने मुझे संसार में भेजते समय अपने कुछ गुण उधार दे दिये हैं। इसी से मैं प्रायः सर्वव्यापक और 'अनेक रूप वाला' हूँ। नाना प्रकार के रूप धारण कर संसार का उपकार करता हुआ मैं निरन्तर विचरता रहता हूँ। मैं अकेला पूरा काम नहीं कर सकता, इसलिए ईश्वर ने मुझे एक सहायक और दिया है, जिसकी सहायता से मैं बड़े-बड़े अनोखे काम करता रहता हूँ। मेरे सहायक का नाम 'उष्णता' है।

मेरा सहायक मुझ से भी बढ़कर गुणवान है और होना भी ऐसा ही चाहिए। क्या यह देखने में नहीं आता कि बड़े-बड़े राजाओं के राज्य की पोल उनके चतुर सहायकों के कारण नहीं खुल पाती?

उष्णता भी अनेक रूप धारण कर दिलोजान से मेरी सहायता करती है। इसमें अद्भुत गुण यह है कि यह अदृश्य है और इसका कुछ बोझ नहीं। इन्हीं दो गुणों से मुझे अत्यन्त सहायता मिलती है। यदि उष्णता मुझे सहायता न दे, तो मैं अपना रूप नहीं बदल सकता, और न संसार में इतना उपकार ही कर सकता हूँ। मेरे तीन रूप हैं :—

हिमावस्था में मेरे मुख्य निवास-स्थान उत्तरीय और दक्षिणीय ध्रुव हैं। पृथ्वी के ऊँचे-ऊँचे पर्वतों के सिर पर भी मैं रहता हूँ। इनमें मुख्य स्थान भारत के उत्तर में एक पर्वत का है, जिसे मेरे ही कारण लोग हिमालय कहते हैं। उष्णता की सहायता से मैं इस पर्वत से उतर कर गंगा, यमुना आदि नदियों में बारहों मास बहता रहता हूँ। उद्योग ही सर्व-प्रधान प्रिय वस्तु है, यह विचार कर पर्वतों पर मैं चुप नहीं बैठा रहता। उष्णता की पहुँच से पहले ही मैं सरकने लगता हूँ। तब लोग मुझे ग्लेशियर कहते हैं। तब मेरी रगड़ स पर्वतों की बड़ी-बड़ी चट्टानें टूट गिरती हैं, जिन्हें मैदान में लाते-लाते मैं कंकड़ बना देता हूँ।

पर्वतों के तोड़ने का मेरे पास एक उपाय और है। उष्णता की सहायता से मैं पर्वतों की दरारों में घुस जाता हूँ। फिर उष्णता के चले जाने पर मैं फूलने लगता हूँ और पर्वतों के टुकड़े-टुकड़े कर देता हूँ। हिमावस्था में मैं समुद्र के जल से हलका रहता हूँ। इसीलिए कभी-कभी मेरा पर्वताकार शरीर समुद्र पर बहता हुआ दिखाई देता है। जब मल्लाह लोग आँख मीच कर काम करते हैं तब उनका जहाज़ मुझ से टकरा कर नष्ट हो जाता है। ग्रीष्मकाल में जब उष्णता लोगों को बहुत सताने लगती है, तो उसे समझाने के लिए वे मुझे हिम रूप में अपने पेट में भेजना चाहते हैं। प्रायः पेट में जाने के बाद ही उष्णता को सोडा, लेमोनेड, या स्वच्छ जल के ग्लास से ही समझा-बुझा कर शान्त करने लगता हूँ।

ठंड के दिनों में रात्रि के समय मोतियों का रूप धारण कर मैं पत्तों तथा घास आदि पर जा बैठता हूँ, तब मेरा नाम ओस पड़ता है। परन्तु कभी-कभी अधिक सर्दी पड़ने से मैं

जम जाता हूँ, तब लोग मुझे पाला या तुषार कहने लगते हैं। मुझे मेरे माँ-बाप हाइड्रोजन और ऑक्सीजन ने पैदा किया और पाला है। फिर मेरी समझ में नहीं आता कि ये लोग मुझे पाला क्यों कहते हैं। बस, इसी बात पर चिढ़कर मैं उनकी खेती का नाश करने लगता हूँ। हिम की अवस्था में मुझ में कुछ गुण और भी हैं। यदि मेरे दो टुकड़े खूब जोर से दबाओ, तो मैं जुड़ भी जाता हूँ। ठंडे देशों में छोटे बालक इसी तरह मेरे गेंद बना कर खेलते हैं।

हिमावस्था में यदि मुझ पर शोरा, लवण आदि छिड़का जाय तो मैं और भी ठंडा हो जाता हूँ। फिर लोग मेरे शरीर में दूध की बलियाँ गाड़-गाड़ मलाई की कुलफ़ियाँ बनाते हैं। आकाश से जब मैं हिम-बाणों के रूप में गिरता हूँ, उस समय यदि कोई मुझे सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र से देखे, तो नाना प्रकार के सुन्दर और सुडोल दाने देखकर अचम्भा करेगा।

साधारणतः मैं द्रवावस्था में पाया जाता हूँ। इस रूप में, मैं और भी अधिक चमत्कार दिखाता हूँ। स्मरण रहे, मैं पहले कह चुका हूँ कि उष्णता की सहायता से मैं हिम-रूप छोड़ कर जल-रूप धारण करता हूँ। जिन्हें विश्वास न हो वे इस तरह मेरी बात की सच्चाई परख सकते हैं। हिमावस्था में मेरा एक टुकड़ा लो, छू कर देखो कि मैं कितना ठंडा हूँ। फिर बर्तन में रख कर नीचे से आँच लगाओ। सारा गल चुकने से जरा पहले फिर स्पर्श कर देखो कि द्रवावस्था में भी मैं उतना ही ठंडा हूँ। अच्छा, तो जो आँच दी गई उसका क्या हुआ? वह हिमावस्था से जलावस्था में लाने पर अन्तर्धान हो गई। एक बात और है। हिमावस्था से तरलावस्था में आने पर मैं शरीर में कुछ कम हो जाता हूँ। चाहो, देख लो, गिलास-भर बर्फ़ का गिलास भर पानी न बनेगा। परन्तु

लगातार उष्णता देने पर फिर मैं बढ़ने लगता हूँ। मेरे इसी गुण से समुद्र, नदी, नालों के जीव-जन्तु शीतकाल में बर्फ़ जम जाने पर भी नहीं मरते।

तरलावस्था में मेरा बसेरा नदी-नाले, कुआँ-तालाब, झील-झरने और समुद्रों में होता है। शीतकाल में वहाँ मैं सिकुड़ कर तंग आ जाता हूँ तो निडर शीत का सामना करता हूँ। अभय होने की खुशी में मैं खूब फैल कर ऊपर बहने लगता हूँ और शीत को अपने आर-पार नहीं जाने देता, जिससे नीचे के जीवों का बचाव होता है।

इसी रूप में, मुझ में एक यह गुण भी होता है कि मैं कई पदार्थों को अदृश्य कर देता हूँ। क्या यह बाजीगर के खेल से कम तमाशा है? मिश्री की एक डली मेरे हाथ में दे दो, फिर क्या मजाल कि थोड़ी देर बाद उसका पता लग सके! इतना ही नहीं, यदि तुम उष्णता को मेरी सहायता के लिये भेज दो, तो एक नहीं कई डालियाँ हड़प जाऊँगा। इस इन्द्रजाल की कुञ्जी मैं तुमको बताए देता हूँ। मैं ऐसे पदार्थों के अनन्त अंश कर अपने में मिला लेता हूँ।

मुझे जिह्वा पर रखो, स्वाद अदृश्य पदार्थ का आएगा; अर्थात् मैं पदार्थों को अदृश्य बना देता हूँ; यद्यपि पदार्थ वहीं रहते हैं।

इसकी पहचान यह है कि प्रायः पदार्थ अपना रंग-स्वाद मुझे अर्पण कर देते हैं। कई पदार्थों का रासायनिक प्रयोग भी मेरे द्वारा होता है। सूखे चूने और नौसादर को मिलाओ कुछ भी न होगा। परन्तु जरा मुझे प्रवेश करने दो, क्या रँगत दिखाता हूँ। फ़ौरन सिर का दर्द मिटाने वाला अमोनिया

गैस निकाल बाहर करता हूँ। सोडे और फटकरी को मिलाओ, कुछ न होगा, परन्तु मेरे एक हाथ में सोडा दो, दूसरे में फटकरी, दोनों हाथों को मिलाते ही एक नया पदार्थ बन जाता है।

मैं बड़ा बलवान् हूँ। किसी को हाथी पर चढ़ाऊँ, किसी को ऐसा पछाड़ूँ कि जन्म भर याद रखे। गंधक का तेजाब मनुष्य नहीं पी सकता, किन्तु जब मैं उसके पास जाकर एक पछाड़ बताता हूँ तो उसकी हड्डियों को चूर्ण कर देता हूँ। फिर मनुष्य उसका जो चाहे सो करे। इस झगड़े में मुझे बड़ा जोश आता है। शरीर में उष्णता इतनी बढ़ जाती है कि मैं वाष्प-रूप होकर कूदने तक लगता हूँ। जिस तरह मैं किसी का ज़ोर तोड़ता हूँ, वैसे ही किसी-किसी को बल-प्रदान भी करता हूँ।

होमियोपैथों से पूछो, जितना मेरा अंश बढ़ाते हैं, उतना ही मैं औषधि का बल बढ़ाता हूँ। प्रकाश भी मुझ से मिलकर अद्भुत चमत्कार दिखाता है। रंग-बिरंगी शीशियों में मुझे बन्द रख कर लोग मनुष्य जाति के नाना प्रकार के रोगों को मिटाते हैं। साधारणतया मेरा रंग सफ़ेद है, परन्तु नदी और समुद्रों में, जहाँ मैं बहुत मोटा होता हूँ, मेरा रंग नीला दिखाई देता है, जिसे लोग भूल से आकाश का प्रतिबिम्ब भी कहते हैं।

मैं निराकार हूँ, व्यापक हूँ, स्वाद-रहित हूँ। लोग मुझे मीठा या खारा कहते हैं। मीठापन या खारापन मेरा गुण नहीं है; किन्तु मेरे हृदय से लिपटे हुए मेरे मित्रों का है। 'संग तारे कुसंग डोबे'—मित्रों के भला-बुरा होने से मुझे भी भला-बुरा

कहाना पड़ता है। जिन लोगों को मित्रता सीखनी हो, मुझ से और मेरे पूर्ण स्नेही मित्र दूध से सीखें। संयोग होने के बाद वियोग हम को बहुत बुरा मालूम होता है, यहाँ तक कि नाक में दम हो जाता है। जब निर्दय लोग दूध से मेरा बिछोह कराना चाहते हैं, तब दूध आग में जल मरने को तैयार होता है, किन्तु दूर से ही मेरी लौटती सूरत देखकर प्रसन्नचित्त हो जाता है।

—'गहलौत'

मित्रता

जब कोई युवा पुरुष अपने घर से बाहर निकल कर बाहरी संसार में अपनी स्थिति जमाता है, तब पहली कठिनता उसे मित्र चुनने में पड़ती है। यदि उसकी स्थिति बिल्कुल एकान्त और निराली नहीं रहती तो उसकी जान-पहचान के लोग धड़ाधड़ बढ़ते जाते हैं और थोड़े ही दिनों में कुछ लोगों से उसका हेल-मेल हो जाता है। यही हेल-मेल बढ़ते-बढ़ते शत्रुता के रूप में परिणत हो जाता है। मित्रों के चुनाव की उपयुक्तता पर उसके जीवन की सफलता निर्भर हो जाती है, क्योंकि संगत का गुप्त प्रभाव हमारे आचरण पर भारी पड़ता है।

हम लोग ऐसे समय समाज में प्रवेश करके अपना कार्य आरम्भ करते हैं, जब कि हमारा चित्त कोमल और हर तरह का संस्कार ग्रहण करने योग्य रहता है। हमारे भाव अपरिमार्जित और हमारी प्रवृत्ति अपरिपक्व रहती है, अपने मनोवेगों की शक्ति और अपनी प्रकृति की कोमलता का पता हमें भी नहीं रहता। हम लोग कच्ची मिट्टी की मूर्ति के समान रहते हैं जिसे जो जिस रूप का चाहे, उस रूप का करे—चाहे राक्षस बनावे, चाहे देवता। ऐसे लोगों का साथ हमारे लिये बुरा है जो हमसे अधिक दृढ़ संकल्प के हैं, क्योंकि हमें उनकी हरएक बात बिना विरोध के मान लेनी पड़ती है। पर ऐसे लोगों का साथ करना और भी बुरा है जो हमारी ही बात को ऊपर रखते हैं; क्योंकि ऐसी दशा में न तो हमारे ऊपर कोई दाब रहती है

और न हमारे लिये कोई सहारा रहता है। दोनों अवस्थाओं में जिस बात का भय रहता है, उसका पता युवा-पुरुषों को प्रायः वहुत कम रहता है! यदि विवेक से काम लिया जाए तो यह भय नहीं रहता, पर युवा पुरुष प्रायः विवेक से कम काम लेते हैं।

कैसे आश्चर्य की बात है कि लोग एक घोड़ा लेते हैं तो उसके गुण-दोष को कितना परख कर लेते हैं, पर किसी को मित्र बनाने में उसके पूर्व आचरण और प्रकृति आदि का कुछ भी विचार और अनुसंधान नहीं करते। वे उसमें सब बातें अच्छी-ही-अच्छी मान कर उस पर अपना पूरा विश्वास जमा लेते हैं। हँसमुख चेहरा, बात-चीत का ढंग, थोड़ी चतुराई व साहस—ये ही दो-बातें किसी में देख कर लोग चटपट उसे अपना वना लेते हैं। हम लोग यह नहीं सोचते कि मैत्री का उद्देश्य क्या है तथा जीवन के व्यवहार में उसका कुछ मूल्य भी है। यह बात हमें नहीं सूझती कि यह एक ऐसा साधन है जिससे आत्मशिक्षा का कार्य बहुत सुगम हो जाता है। एक प्राचीन विद्वान का वचन है—"विश्वासपात्र मित्र से बड़ी भारी रक्षा रहती है। जिसे मित्र मिल जाय, उसे समझना चाहिए कि खजाना मिल गया।" विश्वासपात्र मित्र जीवन की एक औषधी है। वे हमें दृढ़ करेंगे, दोषों और त्रुटियों से हमें बचावेंगे, हमारे सत्य, पवित्रता और मर्यादा के प्रेम को पुष्ट करेंगे; जब हम कुमार्ग पर पैर रखेंगे, तब वे हमें सचेत करेंगे; जब हम हतोत्साह होंगे तब हमें उत्साहित करेंगे। सारांश यह कि वे हमें उत्तमतापूर्वक जीवन-निर्वाह करने में हर तरह से सहायता देंगे। सच्ची मित्रता में उत्तम-से-उत्तम वैद्य की सी

निपुणता और परख होती है; अच्छी-से-अच्छी माता का-सा धैर्य और कोमलता होती है। ऐसी ही मित्रता करने का प्रयत्न प्रत्येक युवा पुरुष को करना चाहिए।

छात्रावस्था में तो मित्रता की धुन सवार रहती है। मित्रता हृदय से उमड़ पड़ती है। पीछे जो स्नेह-बन्धन होते हैं, उनमें न तो उतनी उमंग रहती है, न खिन्नता। बाल-मैत्री में जो मग्न करने वाला आनन्द होता है, जो हृदय को वेधने वाली ईर्ष्या और खिन्नता होती है, वह और कहाँ? कैसी मधुरता और कैसी अनुरक्ति होती है? कैसा अपार विश्वास होता है? हृदय के कैसे-कैसे, उदगार निकलते हैं? वर्तमान कैसा आनन्दमय दिखाई पड़ता है और भविष्य के सम्बन्ध में कैसी लुभाने वाली कल्पनाएँ मन में रहती हैं! कैसा बिगाड़ होता है और कैसी आर्द्रता के साथ मेल होता है? कैसी क्षोभ से भरी बातें होती हैं और कैसी आवेगपूर्ण लिखा-पढ़ी होती है। कितनी जल्दी बातें लगती हैं और कितनी जल्दी मानना मनाना होता है। 'सहपाठी की मित्रता' इस उक्ति में हृदय की कितनी भारी उथल-पुथल का भाव भरा हुआ है। किन्तु जिस प्रकार युवा पुरुष की मित्रता स्कूल के बालक की मित्रता से दृढ़, शान्त और गम्भीर होती है, उसी प्रकार हमारी युवावस्था के मित्र बाल्यावस्था के मित्रों से कई बातों में भिन्न होते हैं। मैं समझता हूँ कि मित्र चाहते हुए बहुत से लोग मित्र के आदर्श की कल्पना मन में करते होंगे, पर इस कल्पित आदर्श से तो हमारा काम जीवन की झंझटों में चलता नहीं। सुन्दर प्रतिभा, मनभावनी चाल और स्वच्छन्द प्रकृति-ये ही दो चार बातें देख कर मित्रता की जाती है, पर जीवन-संग्राम में साथ

देने वाले मित्रों में इससे कुछ अधिक बातें चाहिएँ। मित्र केवल उसे नहीं कहते जिसके गुणों की तो हम प्रशंसा करें, पर जिससे हम स्नेह न कर सकें, जिससे अपने छोटे-मोटे काम तो हम निकालते जायें, पर भीतर घृणा करते रहें। मित्र सच्चे पथ-प्रदर्शक के समान होना चाहिए, जिस पर हम पूरा विश्वास कर सकें, भाई के समान होना चाहिए, जिसे हम अपना प्रीतिपात्र बना सकें। हमारे और हमारे मित्र के बीच सच्ची सहानुभूति होनी चाहिये। ऐसी सहानुभूति जिससे दोनों मित्र एक-दूसरे की बराबर खोज-खबर लिया करें, ऐसी सहानुभूति जिससे एक के हानि-लाभ को दूसरा अपना हानि-लाभ समझे।

मित्रता के लिये यह आवश्यक नहीं है कि दो मित्र एक प्रकार का कार्य करते हों या एक ही रुचि के हों। इसी प्रकार प्रकृति और आचरण की समानता भी आवश्यक व वांछनीय नहीं है। दो भिन्न प्रकृति के मनुष्यों में बराबर प्रीति और मित्रता रही है। राम धीर और शांत प्रकृति के थे, लक्ष्मण उग्र और उद्धत स्वभाव के थे। पर दोनों भाइयों में अत्यन्त प्रगाढ़ स्नेह था। उदार तथा उच्चाशय कर्ण और लोभी दुर्योधन के स्वभावों में कुछ विशेष समानता न थी, पर उन दोनों की मित्रता खूब निभी। यह कोई बात नहीं है कि एक स्वभाव व रुचि के लोगों ही में मित्रता हो सकती है। समाज में विभिन्नता देख कर हम लोग एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं। जो गुण हम में नहीं हैं, हम चाहते हैं कि कोई ऐसा मित्र मिले जिसमें वे गुण हों। चिन्ता-शील मनुष्य प्रफुल्लित-चित्त मनुष्य का साथ ढूंढता है; निर्बल बली का, धीर उत्साहित का। उच्च

आकांक्षा वाला चन्द्रगुप्त युक्ति और उपाय के लिये चाणक्त का मुँह ताकता था। नीति-विशारद अकबर मन बहलाने के लिए बीरबल की ओर देखता था।

मित्र का कर्त्तव्य इस प्रकार बतलाया गया है—"उच्च और महाकार्यों में इस प्रकार सहायता देना, मन बढ़ाना और साहस दिलाना कि तुम अपनी निज सामर्थ्य से बाहर काम कर जाओ।" यह कर्त्तव्य उसी से पूरा होगा जो दृढ़ चित्त और संकल्प का हो। इससे हमें ऐसे ही मित्रों की खोज में रहना चाहिए, जिनमें हमसे अधिक आत्मबल हो। हमें उनका पल्ला इस तरह पकड़ना चाहिए, जिस तरह सुग्रीव ने राम का पल्ला पकड़ा था। मित्र हों तो प्रतिष्ठित और शुद्ध हृदय के हों, मृदुल और पुरुषार्थी हों, शिष्ट और सत्यनिष्ठ हों, जिससे हम अपने को उनके भरोसे छोड़ सकें और यह विश्वास कर सकें कि उनसे किसी प्रकार का धोखा न होगा। मित्रता एक नई शक्ति की योजना है। बर्क ने कहा है कि आचरण-दृष्टान्त ही मनुष्य जाति की पाठ-शाला है। जो कुछ वह उससे सीख सकता है, वह और किसी से नहीं।

संसार के अनेक महान् पुरुष मित्रों की बदौलत बड़े-बड़े कार्य करने में समर्थ हुए हैं। मित्रों ने उनके हृदय के उच्च भावों को सहारा दिया है। मित्रों ही के दृष्टान्तों को देखकर उन्होंने हृदय को दृढ़ किया है। अहा! मित्रों ने कितने मनुष्यों के जीवन को साधु और श्रेष्ठ बनाया है। उन्हें मूर्खता, कुमार्गता के गड्ढों से निकाल कर सात्त्विकता के पवित्र शिखर पर पहुँचाया है। मित्र उन्ह सुन्दर मन्त्रणा और सहारा देने के लिए सदा उद्यत रहते हैं, जिनके सुख और सौभाग्य की चिन्ता वे निरन्तर करते हैं। ऐसे भी मित्र

होते हैं जो विवेक को जाग्रत करना और कर्त्तव्य-बुद्धि को उत्तेजित करना जानते हैं। ऐसे भी मित्र होते हैं जो टूटे जी को जोड़ना और लड़खड़ाते पाँव को ठहराना जानते हैं। बहुतेरे मित्र हैं जो ऐसे दृढ़ आशय और उद्देश्य की स्थापना करते हैं जिनसे कर्म-क्षेत्र में आप भी श्रेष्ठ बनते हैं, और दूसरों को भी श्रेष्ठ बनाते हैं। मित्रता जीवन और मरण के मार्ग में सहारे के लिए है। यह सैर-सपाटे और अच्छे दिनों के लिए भी है और संकट और विपत्ति के बुरे दिनों के लिए भी है; यह हँसी-दिल्लगी के गुलछर्रों में भी सहायता देती है और धर्म के मार्ग में भी मित्रों को एक-दूसरे के जीवन के कर्त्तव्यों को उन्नत करके उन्हें साहस, बुद्धि और एकता द्वारा चमकाना चाहिए। हमें अपने मित्रों से कहना चाहिए—'मित्र, अपना हाथ बढ़ाओ! यह जीवन और मरण में हमारा सहारा होगा। तुम्हारे द्वारा मेरी भलाई होगी। पर यह नहीं कि सारा ऋण मेरे ही ऊपर रहे, तुम्हारा भी उपकार होगा; जो कुछ तुम करोगे, उससे तुम्हारा भी भला होगा। सत्यशील, न्यायवान् और पराक्रमी बने रहो क्योंकि यदि तुम चूकोगे तो मैं भी चूकूँगा। जहाँ-जहाँ तुम जाओगे मैं भी जाऊँगा। तुम्हारी बढ़ती होगी। जीवन के संग्राम में वीरता से लड़ो, क्योंकि तुम्हारी ढाल मैं लिए हूँ।'

दुनिया तो जैसी हमारी संगत होगी वैसा हमें समझेगी ही। पर हमें अपने कामों में भी संगत के अनुसार सहायता पहुँचेगी। उसका चित्त अत्यन्त दृढ़ समझना चाहिए जिसकी चित्त-वृत्ति पर उन लोगों का कुछ भी प्रभाव न पड़े जिनका बराबर साथ रहता है। पर अच्छी तरह समझ रखो कि यह कभी हो नहीं सकता। चाहे तुम्हें जान न पड़े पर उनका प्रभाव तुम पर बराबर हर घड़ी पड़ता रहेगा और उसी के अनुसार तुम उन्नत-अवनत होगे, उत्साहित और हतोत्साह होगे।

कुसंग का ज्वर सबसे भयानक होता है। यह केवल सद्‌वृत्ति का ही नाश नहीं करता बल्कि बुद्धि का भी क्षय करता है। एक बार जब मनुष्य अपना पैर कीचड़ में डाल देता है, तब फिर यह नहीं देखता कि वह कहाँ और कैसी जगह पैर रखता है। धीरे-धीरे उन बुरी बातों से अभ्यस्त होते-होते तुम्हारी घृणा कम हो जायेगी। पीछे तुम्हें उन से चिढ़ न मालूम होगी। तुम्हारा विवेक कुण्ठित हो जाएगा और तुम्हें भले-बुरे की पहचान न रह जायेगी। अन्त में होते-होते तुम भी बुराई के भक्त बन जाओगे। अतः हृदय को उज्ज्वल और निष्कलंक रखने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि बुरी संगत की छूत से बचो। पुरानी कहावत है कि—

काजल की कोठरी में कैसोहू सयानो जाय,
एक लीक काजल की लागि है पै लागि है॥

—(स्व०) रामचन्द्र शुक्ल

धरती की रामकहानी

तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि जिस सूर्य की प्रदक्षिणा करते करते मुझे दो अरब साल से अधिक अर्सा हुआ है उसी सूर्य के वंश में मेरा जन्म हुआ है।

सन्तान के अभाव में उन दिनों यह सूर्य शून्य में ही कुढ़ता रहता। अकस्मात् एक दिन महाज्योति इससे कई गुणा विशाल और उज्ज्वल, इसके बिल्कुल पास से चल पड़ी। उसके प्रभाव से खिचकर सूर्य का एक भाग बिछुड़ गया। पर सुशील था कि जन्मते ही पिता (सूर्य) की परिक्रमा करने लगा। लगातार परिक्रमा करते-करते उसके खण्ड-खण्ड हो गये, पर उसने उफ़ तक न की। यही खण्ड आपस के आकर्षण से मिलते-बिछुड़ते दस ग्रहपिण्डों में बनते गये, और इन्हीं में से मेरा भी उद्भव हुआ।

आज तुम मेरी मनोरम चाल-ढाल को देखकर फड़क उठते हो; पर मेरे छुटपन की यातनाओं को सुनोगे तो काँप उठोगे। यह जो आज मुझे घेरने वाला वातावरण मुझ से भिन्न दिखता है उन दिनों मेरा एक अभिन्न अंग था और यह चन्द्रमा भी मेरे ही हृदय का एक टुकड़ा है।

शुरू से ही मैं ठोस नहीं थी, सर्वप्रथम अवस्था मेरी गैस की अवस्था थी। गैस के परमाणु जुड़ते भाप का एक मेघ सा बनते गये। केन्द्र का भाग भँवर खाते-खाते ठोस होने ही लगा था कि परस्पर के संघर्षण से उसका तापमान बढ़ गया

और उसे पिघलना पड़ा। लोहार की भट्टी तुमने देख ली है न ? कैसे लोहे को पिघला देती है ! ऐसे ही एक विशाल और भीषण भट्टी में उस समय मेरा शरीर गढ़ा जा रहा था। पिघले हुए तरल—भाग से ही मेरा शरीर बना, और बचा हुआ गैस भाग मुझसे अलग होते हुए भी वातवरण के रूप में मुझे घेरे रहा। तब से लगातार यह मेरा भाई मेरी रक्षा में कटिबद्ध रहा है।

हाँ, मैं चन्द्रमा के बारे में कहना भूल ही गई। क्या करूँ, इन्सानों की हैवानीं जंगों ने मेरा दिमाग़ परेशान कर रखा है। खैर, महाज्योति ने जैसी उथल-पुथल हमारे पूर्वज सूर्य में मचा रखी थी, वैसी ही उथल-पुथल इस नये सूर्य ने मुझ में भी मचा दी। मेरा तरल होता हुआ हृदय का मध्य-भाग सूर्य की ओर इतना खिचा कि उसे अलग होना ही पड़ा। अलग होकर भी मुझे वह भूला नहीं, बड़ी श्रद्धा से मेरी परिक्रमा करता रहा। हमारे सौरपरिवार की यही रीत है। मैं भी तो सूर्य की परिक्रमा करती रहती हूँ !

अपने दिल के टुकड़े का वियोग मुझसे सहा न गया। माँ का दिल ठहरा ! शुरू-शुरू में तो खामोश आहें भरता रहा, पर बाद में हाहाकार मचा उठा। यही हाहाकार आजकल भी तुम्हें प्रशान्त, हिन्द, अटलांटिक, आदि महासागरों में सुनाई पड़ता है।

यह हाहाकार कैसे शुरू हुआ, वह भी सुनाती हूँ। मेरा पिघलता हुआ भाग ऊपरी सतह पर जम रहा था और उसके नीचे तरल पदार्थों का घोर संघर्ष जारी रहता। मेरे अन्दर अशान्ति तो थी ही, बाहर भी चारों ओर अशान्ति की ही कश्मकश हो रही थी। जहाँ कहीं मरी पपड़ी दुर्बल मिली वहीं से मेरे अन्दर की अशान्ति उबलते हुए लावे के रूप में उछल पड़ी और सुदूर आकाश

तक अपना गंधक और हाइड्रोजन पहुँचा गई। इस हाइड्रोजन का ज्योंही ऑक्सीजन के साथ उपयुक्त (२ : १) मेल हुआ, त्योंही पहली बार आकाश के आंसू बरसने लगे। बरसे तो सही, पर मुझ तक पहुँचने से पूर्व ही मेरी जलन की लपटों से सूख गये। बरसों के बाद जब मेरी जलन शान्त होती गई, तब कहीं आकाश की यह करुणा-बूँदें मुझ तक पहुँचने लगीं। शीघ्र ही इन बूँदों की ऐसी झड़ी लगी कि सौ-सौ, दो-दो सौ इंच पानी मेरे हृदय में जमता गया। यह आँसू भी क्या थे? खौलती जल-धाराएँ थीं। मेरी गीली हड्डियों (चट्टानों) पर आज भी इन आँसुओं के चिन्ह अमेरिका आदि में मिलते हैं।

इस प्रकार मेरे तरल भाग को घेरे रहने वाला गैसवितान भी फटता गया और उसके स्थान पर पतली और साफ़ वायु का समुद्र लहराने लगा जिसमें तैरती हुई सूरज की किरणें मुझे चूमने को दौड़ती आईं। बरसों के बाद मुझे अपने पिता का दुलार मिला। क्या बताऊँ उस दिन मुझे कितना उल्लास था—अपने पीड़ा-भरे जीवन में उस दिन मैं पहली बार मुस्कुरा सकी!

—पुष्प

विशाल भारत

भारत का दक्षिण-पूर्वी और पश्चिमी भाग विशाल समुद्र तट से घिरा हुआ है और कन्या-कुमारी के पास वह एक समुद्र देश का ही दृश्य उपस्थित करता है। भारत का व्यापार प्राचीन काल से ही विदेश के साथ रहा है। इसलिये कोई आश्चर्य नहीं कि दक्षिण भारत वालों ने व्यापारिक मण्डियों की तलाश में जहाज़ तैयार करके समुद्र लांघे हों ?

चन्द्रगुप्त मौर्य के महामंत्री कौटिल्य ने भी अपने अर्थ-शास्त्र में जहाज़ों का वर्णन किया है और चन्द्रगुप्त के दरबार में आये हुए ग्रीक राजदूत मेगास्थनीज़ ने भी इसकी चर्चा की है। दक्षिण का ही समुद्र से विशेष सम्बन्ध है, अतएव समुद्री व्यापार का भी अधिकांश भाग दक्षिणियों के हाथ में रहा है। दूसरी और तीसरी शताब्दी के आँध्र-देशीय सिक्कों पर तो मस्तूल के जहाज़ों के छाप पाये जाते हैं। इस से सिद्ध होता है कि दक्षिण-वाले जहाज़ बनाना जानते थे और समुद्री व्यापार में पटु थे। उन्ही के प्रयत्नों से पूर्वीय द्वीपों में भारतीय उपनिवेश बसे थे।

ईसा की प्रथम शताब्दी से शुरू होकर ३५० वर्ष तक यह उपनिवेश बसाने का काम जारी रहा। मलक्का, जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया, और बोर्नियो सभी जगह दक्षिणी लोग अपने साथ भारतीय संस्कृति फैलाते गये। बर्मा, स्याम, और इण्डोचाइना में भी विशाल भारतीय उपनिवेश बस चुके थे। वह हिन्दू उपनिवेश थे और इन का नाम दक्षिणी भारत के स्थानों के ढंग पर था।

कुछ शताब्दी बाद वहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ और सारा मलयेशिया (मलाया + एशिया) बौद्ध बन गया ।

इण्डो-चीन भारत का प्राचीनतम उपनिवेश था अन्नाम, जिसका पुराना नाम था, चम्पा । वहाँ तीसरी शताब्दी में पाण्डु-रंगम नाम का एक भव्य नगर खड़ा हुआ । ४०० वर्ष बाद कम्बोज में भी महान नगर बस गये । ये नगर बड़ी बड़ी इमारतों और मन्दिरों-से होते थे । मलयेशिया के निवासी अधिकतर व्यापारी और यात्री थे । इनका राज्य भी सम्पन्न व्यापारियों के हाथों में था । अक्सर उनके छोटे छोटे राज्यों में लड़ाइयाँ और खून-ख़राबी हुआ करती । कुछ दिनों बाद जब बौद्ध धर्म प्रबल हो उठा तो इन लड़ाइयों का रूप धार्मिक हो गया । कभी कोई बौद्ध राज्य हिन्दू राज्य पर हमला करता, तो कभी कोई हिन्दू राज्य बौद्ध राज्य पर । किन्तु इन लड़ाइयों की तह में आज ही की तरह बाज़ारों पर अधिकार करने की होड़ ही अधिकांश में थी ।

आठवीं शताब्दी तक इन्डो-चीन में तीन बड़े हिन्दू राज्य थे । नवमी शताब्दी में जय-वर्मन नामक एक महत्त्वाकांक्षी शासक पैदा हुआ, जिसने उन सभी राज्यों को मिला कर एक महान् साम्राज्य स्थापित किया, जो ३०० वर्ष तक कायम रहा । तेरहवीं शताब्दी में कम्बोडिया पर कई तरफ से आक्रमण हुआ और बहुत दिनों तक निरन्तर लड़ते रहने के फलस्वरूप राज्य कमज़ोर हो गया । इसी बीच एक भयंकर प्राकृतिक विपत्ति भी कम्बोडिया के पतन में सहायक हुई । १३०० ई० के लगभग राजधानी अंगकोट के पास मैकांग नदी के मुहाने पर इतनी मिट्टी जम गई कि नदी का बहना दुष्कर हो गया, जिससे समूचे निकटवर्ती प्रदेश में भयंकर बाढ़ आ गई । अंगकोट का शानदार नगर उजड़ गया और कम्बोडिया का राज्य नष्ट हो गया ।

इन्डो-चीन के पास ही सुमात्रा का भी द्वीप है। यहाँ पहली या दूसरी शताब्दी में दक्षिण के पल्लव राजाओं ने अपना उपनिवेश स्थापित किया था। मलाया प्रायद्वीप प्रारम्भ से ही सुमात्रा का भाग बन गया, और बहुत दिनों तक इन दोनों देशों के भाग्य एक साथ बँधे रहे। इस की राजाधानी थी श्री विजय नामक विशाल नगर में जो सुमात्रा की पहाड़ियों में स्थित था। पाँचवीं या छठी शताब्दी में वहां बौद्ध धर्म पहुँचा। तथा सुमात्रा ने परवर्ती काल में बौद्ध धर्म के प्रचार में अगुआ का भाग लिया। सुमात्रा का राज्य आगे चल कर इतना विस्तृत हो गया कि एक समय उसके भीतर मलाया, बोर्नियो, फिलीपाइन्स, सेलेबीज, जावा का आधा भाग, फारमोसा का आधा भाग, लंका और फारस के समीपस्थ कई बन्दरगाह भी उसके शासन के अन्तर्गत हो गये।

सिंहापुर का प्रसिद्ध सैनिक अड्डा भी सुमात्रा का ही एक उपनिवेश था। उक्त साम्राज्य के विभव का पूरा विकास ११ वीं शताब्दी में हुआ जब दक्षिण भारत में चोल साम्राज्य उन्नति पर था। बाद में १४वीं शताब्दी में जावा के वल्लव उपनिवेश द्वारा श्री विजय और सुमात्रा के साम्राज्य का अन्त हो गया।

१२वीं शताब्दी के बाद जावा का राज्य धीरे धीरे बढ़ने लगा था और उनकी सभ्यता का बोलबाला होता रहा। जावा वाले स्थापत्य कला में अद्वितीय थे; विशेष कर मन्दिर निर्माण की कला में। वहाँ ५०० से ऊपर मन्दिर थे और उन्हें बनाने के लिये ६५० ई० से १०५० ई० बीच में १०० कुशल कारीगर भारत तथा चीन आदि देशों से लिये गये।

—सुरेन्द्र बालू पुरी

('धरती का इतिहास' से)

सहारा

१. लोहार की एक—(पृ० १—४)

पौ फटना=प्रभात होना। गला फाड़ना=ज़ोर ज़ोर से चिल्लाना। आँख लगना=नींद पड़ना। छटे हुए (शैतान)=प्रसिद्ध, प्रमुख। निर्दिष्ट (स्थान)=निश्चित, जहाँ जाना था। सुंघनी=नसवार। चन्दन भी आग उगलता है=शरीफ़ भी नटखट हो उठता है। (अब समझे—'सुनार की सौ, लोहर की एक'!)

२. काकी—(पृ० ५—८)

कुहराम (मचना)=कोलाहल, रोने-धोने का शोर, मातम। आवरण=पर्दा। अगोचर होना=ओझल होना, दिखाई न देना। अन्तस्तल=हृदय। अन्यमनस्क=खोया-खोया। उत्कण्ठित होना=मचल उठना। समवयस्क=एक-सी अवस्था (उम्र) का। बिना दया-माया के=बिना प्यार के, कठोरता से। ओछी=छोटी। अकस्मात्=एकाएक। उग्र मूर्ति=भयानक रूप, क्रोधी। सकपकाना=डरना। मुख़बिर=भेदिया। तमाचे जड़ना=चपत मारना। हतबुद्धि=हक्काबक्का।

३. यशोदा का मातृत्व (पृ० ९—१२)

नीलोज्ज्वल=नील-उज्ज्वल=नीला और निर्मल। मर्मन्तुद आघात=भारी चोट। वेदना=टीस। व्यथा=व्याकुलता। शूल=कांटा। लिप्सा=पाने की इच्छा। साध=इच्छा, अभिलाषा। विषाद=

उदासी। अर्ध मृतावस्था=अर्ध-मृत-अवस्था, अधमरी-सी। कशाघात= कश-आघात, कोड़े।

४. मिठाई वाला—(पृ० १३—२१)

स्नेहाभिषिक्त=स्नेह-अभिषिक्त, प्यार से सना हुआ, प्यार-भरा। अन्तर्व्यापी=अन्तर्-व्यापी, अन्दर फैले हुए। पुलकित हो उठना= खुश होना। मादक=मस्त करने वाला, मनोहर। आकार-प्रकार= रूप-रंग, नैन-नक़श। दो ठो=दो (अदद)। क्षीण स्वर=पतली आवाज़। स्नेह-सिक्त=प्यार भरी। अतिशय=बहुत अधिक। व्यवसाय =काम-धन्धा। सम्पत्ति=धन-दौलत।

५. कल की बात—(पृ० २२—२७)

ले डूबना=असफल कर देना, खराब करना। अडङ्गानीति= अड़चन डालना। टस से मस न होना=ज़रा भी न हिलना, जैसे का वैसा रहना। गार्ड=निरीक्षक। ज़बान माँजना=हँसी उड़ाना। उपचार=उपाय, युक्ति। समयोचित=समय-उचित, [उस] समय के लिए ठीक। धृष्टता=ढिठाई। द्रवीभूत होना= पिघलना, कोमल हो जाना। हृदय-हीन=कठोर, निर्दय। समवेदना=सहानुभूति। सोखता=सियाहीचूस। कण्ठस्थ=याद। निष्कर्ष=नतीजा। अकर्मण्यता=निकम्मापन। उतराना=उभर आना।

६. फिनिक्स में—(पृ० २८—३४)

आत्मोत्सर्ग=आत्म-उत्सर्ग, आत्मबलिदान। निष्णात विद्वान्= भारी, बहुत अच्छा। अग्रलेख=सम्पादकीय। शब्दाडम्बर=शब्दों की भरमार, पर अर्थ की कमी। अभिमत=मानी हुई बात, विचार, विश्वास। वांछनीय=चाहने योग्य, उचित। व्यक्ति-

गत=जाती। सार्वजनिक=सब लोगों का, जनता का। दयार्द्र=दया-आर्द्र, दयालु, कोमल। आरसी=शीशा, दर्पण। पोत-स्थान=बन्दरगाह। मयंक=चन्द्रमा। व्यंगोक्ति=व्यंग-उक्ति, जली कटी [बात], उलाहना, फब्ती। अविच्छिन्न=अटूट।

७. सच्चे हिन्दुस्तानी—(पृ० ३५—३९)

अधः पतन=गिरावट। बाहमी==आपस के। त्यौरियाँ चढ़ना=क्रोध करना। चुनौती=ललकार।

८. सुब्हाना—(पृ० ४०—४५)

आन्तरिक=अन्दर की। व्यथा=पीड़ा। उच्छ्वास=आहें।

९. काश्मीर में बारह दिन—(पृ० ४६—५४)

रमणीक=मनोहर। तीव्र लालसा=भारी इच्छा। प्रभावशाली=प्रभाव डालने वाला, रोचक, आकर्षक।

१०. काश्मीर की प्राचीन महिमा—(पृ० ५५—५९)

पाद-मूल=तलहटी। पर्वत-द्रोणी=वादी। अनुश्रुति=सुनी-सुनाई बात जो बहुत समय से चली आती हो। कालान्तर में=समय बीतने पर। विख्यात=प्रसिद्ध। मेधाशाली=तेज़ बुद्धि वाला। सदाशयता=अच्छी भावना। पूर्ववर्ती=पहले के। प्रतिष्ठापित करना=खड़ा करना, बिठाना।

११. गाँव की याद—(पृ० ६०—६६)

आसिन=असूज। निशाचर=राक्षस। जवार-भर में=आस-पास। कैथी=एक लिपि जिसमें दूकानदार लेखा-जोखा रखते थे। प्रति-योगिता=मुक़ाबिला, होड़। सराहना=बड़ाई, शाबाश।

१२. लेने के देने—(पृ० ६७—७२)

परानी=प्राणी, जीव, लोग। लत्ता=(फटा) कपड़ा। मयस्सर

है=प्राप्त है, मिलता है। खून का घूँट पीकर रह जाना=गुस्सा अन्दर ही अन्दर दबा देना, क्रोध पी जाना। आँखों से अंगारे बरसाना=क्रोध करना। लतियाना=लात मारना, झिड़कना। इज-लास=कचहरी। मुँह पर झाड़ू फिरना=लज्जित होना, मुँह पर फटकार बरसना। संस्कार=दाह-संस्कार।

१३. **प्रेमचन्द की ...(पृ० ७३—७६)**

कलेजा मुँह को आता है=दिल दर्द से भर जाता है। अकाल में कालकवलित=बेसमय ही मरा हुआ। करुणोत्पादक=करुणा--उत्पादक, दिल को कोमल करने वाला। गण्डासा=छोटी सी कुल्हाड़ी। रसना=रस लेने वाली जीभ। (एक एक कौड़ी को) दाँत से पकड़ना=जोड़ना, बचा कर जमा करना।

१४. **अन्धेर नगरी—(पृ० ८०—८३)**

यथास्थान=अपनी अपनी जगह। तमोली=पानवाला। बोदा=घटिया।

१५. **दौड़—धूप—(पृ० ८४—९०)**

दुष्प्राप्य=दुः-प्राप्य, दुर्लभ। प्रतिष्ठित (सिफ़ारिश)=बड़े आदमियों की। पुछत्तर=पूछने वाला, हमदर्द। कष्टसाध्य=कठिन। रूह कांपती थी=डर लगता था। आकांक्षा=अभिलाषा। सौम्य पुरुष=सज्जन। निराशा-व्यथित=निराश होने से दुःखी। पाँव जमीन पर न पड़ना=गर्व से फूले न समाना।

१६. **शाबाश मोटेराम—(पृ० ९१—९९)**

आबकारी=कस्टम। थेथर होय गयन=थक गये। मिट्टी में मिल जाना=तबाह होना, बिपता में पड़ना। उबारना=बचाना.

(डूबने से)। मन्सूबे खाक में मिल गये=आशायें मिट गईं। (जानबूझ कर) मक्खी निगलना=विपता मोल लेना। निरुत्तर= निः-उत्तर, जवाब के वग़ैर, चुप। तलब=तनख्वाह। विस्फारित नेत्रों से=आश्चर्य से, खुली आँखों से। लेशमात्र भी=ज़रा भी। मक्खी चूस=कंजूस।

१७. चैननगर के चार बेकार—(पृ० १००—१०८)

हताश=निराश, मायूस। सुविधा=सहूलियत, आसानी। सौभाग्य=अच्छा भाग्य। तबीयत हरी हो जाना=खुश होना।

१८. कहाँ रहोगे—(पृ० १०६—११८)

आकर्षित हुआ=खिच गया। भन्ते लोग=भदन्त (बौद्ध भिक्षु) लोग। अपव्यय=फ़ज़ूलखर्ची।

१६. पशु-पक्षियों की पार्लमेन्ट—(पृ० ११६—१२८)

निर्जन=निः-जन, सुनसान। केसरी=शेर बवर। युगान्तर= युग-अन्तर, नया ही युग, परिवर्तन। कुक्कुरी=कुतिया। सहयोग= साथ देना। भाषण-पटु=बोलने में चतुर। गर्दभ=गधा। परमुखा-पेक्षी=दूसरे का मुँह तकने वाला, पराधीन। किंवदन्तियाँ=अफवाहें। श्वान-वृत्ति=कुत्ते का जीना। आक्षेपपूर्वक=हमला करते हुए। निरंकुश=निः-अंकुश, बे-रोकटोक। सर्वत्र=हर जगह। संक्रामक=एक से दूसरे तक फैल जाने वाला, छूत का (रोग)। चेतक=महाराणा प्रताप का घोड़ा। उष्ट्र=ऊँट। व्योम-विहारी=आकाश में उड़ने वाले। पृथुलतुन्द=मोटी तुन्द वाला। अशरफ़-उल-मखलूकात=जीव-जन्तुओं में सर्वश्रेष्ठ। परिताप=खेद, अफसोस। चातुर्य=चतुराई। नाक में दम कर रखना=तंग कर रखना।